॥ श्री हरिः ॥

अग्रवाल इतिहास चिन्तनिका

महाराज श्री अग्रसेन

"कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यम् वैश्य कर्म स्वभावजम्"

●

प्रकाशक :—

रामप्रसाद सराफ, मंत्री

श्री अग्रसेन स्मृति भवन

पी-३० ए, कलाकार स्ट्रीट,

कलकत्ता-७०

प्रथम संस्करण

सं० २०३३ वि०

॥ श्री हरिः ॥

अग्रवाल इतिहास चिन्तनिका

महाराज श्री अग्रसेन

"कृषि गौरक्ष्य वाणिज्यम् वैश्य कर्म स्वभावजम्"

●

प्रकाशक :—

रामप्रसाद सराफ, मंत्री

श्री अग्रसेन स्मृति भवन

पी-३० ए, कलाकार स्ट्रीट,

कलकत्ता-७०

प्रथम संस्करण

सं० २०३३ वि०

प्रकाशकीय

अग्रवाल समाज एक वृहत् समाज है। कई वर्षों से यह विचार था कि हमारे समाज की उत्पत्ति, विकासक्रम आदि का एक विवरण प्रकाशित होवे, जो सर्व सुलभ हो। बिना इतिहास के समाज आधारहीन रहता है। अतः भवन-समिति ने इसे प्रस्तुत कर प्रकाशित करवाने का भार श्री कालीचरण केशान एवं श्री श्यामलाल जालान पर दिया। ग्रन्थान्वेषण, अध्ययन एवं खोज के बाद यह पुस्तिका कतिपय विशिष्ट लेखकों के इतिहास तथा परिचय को संकलित कर सम्पादक द्वारा भूमिका के रूप में "महाभारत के आधार पर श्री अग्रसेन जी का काल निर्णय" के साथ आपके सम्मुख है। जब तक अग्रोहा के टीलों की खुदाई नहीं होती हमारी जाति का इतिहास उपलब्ध सामग्री पर ही आधारित रहेगा। आशा है, हमारा यह लघु प्रयास आपको पसन्द आवेगा।

अन्त में मैं सम्पादक द्वय के प्रति उनके अथक प्रयत्नों के लिये आभार प्रदर्शित करता हूँ, जिन्होंने अल्प समय में ही इसे इस रूप में प्रस्तुत कर प्रकाशित कराया है।

विनम्र

दीपावली
संवत् २०३३ वि०

राम प्रसाद सराफ
मंत्री
श्री अग्रसेन स्मृति भवन

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

●

"जिसको नहीं निज जाति और स्वदेश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है॥"

●

"यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्रा मित्राणि बान्धवाः।
सफलं जीवितं तस्य नात्मार्थे कोहि जीवति॥"

●

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मोत्स्वनुष्ठितात्।
"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥"

चिन्तनिका ही क्यों ?

१

आश्विन शुक्ला १ सं० २०३३ (२४ सितम्बर, १९७६) के शुभ दिन श्री अग्रसेन जयंती का रूप कुछ निराला ही था। अग्रवाल समाज में उत्साह और प्रसन्नता की लहर व्याप्त थी। इस वर्ष अग्रवाल जाति के आदि पुरुष महाराज अग्रसेनजी के प्रति राष्ट्रीय श्रद्धांजलि के रूप में भारत सरकार द्वारा महाराज अग्रसेन की डाक-टिकट प्रकाशित एवं प्रचारित की गई। इस अवसर पर जो समारोह हुए उसमें हमने अपने पूर्व पुरुष को श्रद्धांजलि अर्पित करने के साथ अपनी सामाजिक समस्याओं पर भी दृष्टिपात किया। हमने यह भी अनुभव किया कि समाज के प्रबुद्ध जनों में अपने प्राचीन इतिहास का यथासंभव यथार्थ रूप जानने की उत्कंठा है।

महाराज श्री अग्रसेनजी का जो भी वृत्त उपलब्ध है और सामाजिक संस्थाओं द्वारा जो यत्र-तत्र प्रकाशित कराया गया है, उसका आधार अधिकतर जनश्रुति एवं किम्बदन्ती है। आज की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि में पनपा जनमानस लोक प्रचलित गाथाओं में भी ऐतिहासिकता का ठोस आधार ढूंढ़ता है। यह बुद्धिगम्य नहीं है कि मात्र श्रद्धा के आधार पर ही भावी पीढ़ी में परम्परागत मान्यताएँ टिकी रह सकेंगी। अतएव अग्रवाल जाति के प्राचीन इतिहास के चिन्तन तथा अनुसन्धान की प्रवृत्ति

को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से हमने उपलब्ध प्रामाणिक व्यक्तियों की सामग्री का अविलम्ब प्रकाशन अपना कर्त्तव्य समझ, यह संकलन प्रस्तुत किया है। आशा है यत्किंचित् रंजन के साथ शोध कार्य हेतु जिज्ञासु अन्वेषकों को इसमें कुछ सूत्र हस्तगत होंगे।

२

इस प्रकाशन में जो सामग्री संकलित की गई है, उसके सम्बन्ध में :—

(१) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र स्वयं अग्रवाल वंशीय वैश्य थे। उनका निबन्ध "अगरवालों की उत्पत्ति" संवत् १९२८ में, अर्थात् १०५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हुआ था। ऐसा लगता है कि इसका आधार परम्परागत जनश्रुति ही है। भविष्य पुराण की कथा का भी उल्लेख है। भाटों या चारणों के पास वंश परम्परा से संग्रहीत और सुरक्षित सामग्री लोक साहित्य के प्रतीक रूप में ऐतिहासिक अनुसंधान की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। पर पौराणिक प्रमाणों के सम्बन्ध में एक विनम्र निवेदन है कि पुस्तकों के मुद्रण के प्रचलन के पूर्व तक देशकाल की परिस्थितियों के अनुरूप या किसी विचार को प्रामाणिकता देने हेतु इनमें कथाओं का संकलन अबाध गति से होता रहा है। उदाहरण के लिये भविष्य पुराण के उत्तरार्द्ध में पृथ्वीराज-संयोगिता स्वयंवर, अकबर तथा कलकत्ते आदि का वर्णन है। ऐसी परिस्थिति में किसी ऐसे ग्रंथ के प्रमाण को आधारशिला मानने के पूर्व हमें उसकी यथार्थता के सम्बन्ध में आश्वस्त होना पड़ेगा। बंगला विश्वकोषकार ने

भविष्य पुराण की चार प्रतियों का उल्लेख किया है, जिनमें पाठ भेद हैं। मैंने जो प्रति देखी है उसमें "महालक्ष्मी व्रत कथा" या "अग्रवंशानुकीर्तनम्" ये अध्याय नहीं हैं। हो सकता है किसी अन्य प्रति में होवें।

(२) श्री बालचन्द्रजी मोदी अग्रवाल वंशीय प्रामाणिक इतिहासकार थे। उनके द्वारा प्रणीत "देश के इतिहास में मारवाड़ी जाति का स्थान" ७८५ पृष्ठों का विशाल ग्रंथ है, जिसका प्रकाशन संवत् १९९६ में हुआ था। उन्होंने बड़े परिश्रम से "अग्रवालों की उत्पत्ति" नामक पुस्तक में ५५ वर्ष पूर्व उसकाल में उपलब्ध कथाओं, ग्रंथों, संकेतों तथा सूचनाओं का संकलन किया था। इस संकलन के आधार पर यदि कार्य आगे बढ़ा होता तो शायद अब तक हम किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाते।

(३) डा० वासुदेव शरण अग्रवाल भारतीय पुरातत्व के विशेषज्ञ थे। आप नयी दिल्ली के सेन्ट्रल ऐशियन विभाग के अध्यक्ष और बाद में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी में ललित कला तथा वस्तु विभाग के अध्यक्ष थे। प्राचीन भारतीय दर्शन, संस्कृति, पुरातत्व, इतिहास आदि में आपकी उपलब्धियां विशेष महत्व की हैं और प्रमाण रूप से ग्रहण की जाती हैं। "हिन्दी विश्वकोष" के प्रथम संस्करण में आपके द्वारा प्रस्तुत अग्रवाल जाति का परिचय पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

(४) डा० सत्यकेतु विद्यालंकार ने "अग्रवाल जाति का इतिहास" लिखा है। सुनते हैं कि अब वे इस पर नया ग्रंथ या

इसी का वृहत् संस्करण तैयार कर रहे हैं। इसमें संकलित संक्षिप्त लेख से हमें उनके दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है।

फुटकर लेखों में अग्रसेनजी के जीवन चरित्र पर एक और ग्रन्थ "उरू चरितम्" का भी उल्लेख मिलता है। चेष्टा करने पर भी यह ग्रंथ देखने में नहीं आया और न इसकी कोई जानकारी ही हुई। इसका वर्ण्य विषय, इसकी भाषा, इसके लेखक और लेखन काल आदि के विषय में जानने की उत्कंठा है, शायद कभी किसी के प्राचीन संग्रह में उपलब्ध हो जावे।

३

मैं अगस्त १९७६ में अग्रोहा गया था। अग्रोहा एक छोटा सा ग्राम है। यहां एक प्राचीन विशाल थड़ (टीला) है। वहां के निवासी इसका क्षेत्रफल दस हजार बीघा बताते हैं। मैंने उसपर चढ़कर देखा तो ऐसा लगा शायद किसी समय भूस्खलन में कोई बड़ी बस्ती भीतर ही दब गई थी। उसके ऊपर समय-समय पर बस्तियां बसती और उजड़ती रहीं। इस प्रकार यह थड़ ऊँचा होता गया। थड़ में पकी हुई बड़ी-छोटी ईंटे भरी हुई हैं। मोटी मोटी दीवालें स्पष्ट दीखती हैं। पके हुए मृत्तिका भाण्डों के टुकड़े भी बिखरे हुए हैं। ग्राम के बच्चे इस टीले की मिट्टी कुरेदते रहते हैं और उन्हें सिक्के, मुर्तियां, मनके आदि मिलते हैं, जिन्हें वे बाहर से जानेवाले लोगों को बेच देते हैं। मुझे जो ताँबे के सिक्के मिले उनमें एक स्पष्ट कुषाण कालीन है और दूसरे पर पद्म शंख आदि प्रतीक बने हुए हैं। पकी मिट्टी की पुरुष मूर्ति का

भी गर्दन तक का ऊपरी भाग मिला, जो काफी प्राचीन लगता है। इसकी पगड़ी पर नाग के फन का आकार स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। खुदाई होने पर टीले पर बसने वाली बस्तियों का काल-निर्णय तथा सभ्यता का पता चल सकेगा और बहुत संभव है कि आदि सभ्यता की पर्त भी निकल आवे। ऐतिहासिक तथ्योद्घाटन के लिये सुनियोजित उत्खनन नितान्त आवश्यक है। सरकार का और हमारा तुरन्त का कर्त्तव्य तो इस टीले में दबी हुई सामग्री की सुरक्षा की व्यवस्था करना और कराना है। दूसरी एक बात और ध्यान में रखने की है। इस टीले के ऊपर या इसके आस-पास कोई नया वृहत् निर्माण कार्य नहीं होना चाहिये। पता नहीं भू-गर्भ में दबे पुराकालीन बस्ती के अवशेषों के सूत्र किस तरफ जावें। निर्माण को उजाड़ना असाध्य न होने पर भी कष्टप्रद तो होगा ही।

४

अग्रोहे की प्राचीनता और नागकन्याओं से विवाह अग्रसेनजी के जीवन के दो महत्वपूर्ण तथ्य हैं। महाभारत में इससे सम्बन्धित अनेकों साक्ष्य उपलब्ध हैं और विषय की स्पष्टता के लिये उनका अध्ययन आवश्यक है। इसी दृष्टिकोण से निम्नलिखित अध्ययन सामग्री प्रस्तुत की जा रही है।

अग्रोहा महाराज अग्रसेन की राजधानी थी। महाभारत में "अग्र" गण राज्य का उल्लेख अन्य गण राज्यों के साथ हुआ है। वैशम्पायनजी राजा जनमेजय को वन पर्व में घोष

यात्रा का वर्णन सुनाते हुए कहते हैं :—

"भद्रान रोहितकांश्चैव आग्रेयान मालवानपि।
गणान सर्वान् विनिर्जित्य नीतिकृत प्रहसन्निव ॥
(आ० २५४/२०)

इसमें भद्र, रोहीतक, अग्र और मालवजनपद के नाम आये हैं। ऊपर के श्लोक में "यौधेयों" का उल्लेख न होने के कारण अग्र को यौधेय का पर्यायवाची मान लिया जाता है। यह ठीक नहीं है। रोहीतक यौधेयों की राजधानी थी, अतएव श्लोक में रोहितकान यौधेयों का सूचक है। रोहीतक और रोहितकारण्य का महाभारत में अन्यत्र भी उल्लेख है। यथा :—

"ततो बहुधनं रम्यं गवाढ्यं धन धान्यवत्।
कार्तिकेयस्य दयितं रोहीतक मुपाद्रवत् ॥" (सभा० ३२/४)
"तथा रोहितकारण्यं मरुभूमिश्च केवला।" (उद्योग १६/३०)

राजसूय यज्ञ में राजा युधिष्ठिर के लिये भेंट लेकर आने वालों की सूची में (सभा पर्व) अन्य गणों के साथ "यौधेय" का भी उल्लेख है।

"काश्मीराश्च कुमाराश्च घोरका हंस कायनाः।
शिबि त्रिगर्त यौधेया राजन्या भद्र केकयाः ॥
(अ० ५२ श्लो० १४)

इस वर्णन में "अग्र" नहीं है। अतएव "अग्र" के उल्लेख का न होने से "अग्र" तथा "यौधेय" एक ही गण के दो नाम थे की सम्भाव्यता रह जाती है। इसके स्पष्टीकरण के लिये अन्य सूत्रों का भी विचार करना होगा।

पाणिनी का काल ई० ५०० पू० बहु सम्मत है। इनकी अष्टाध्यायी से तत्कालीन समाज एवं राजनीतिक संगठनों का सम्यक् ज्ञान होता है। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपने ग्रन्थ "पाणिनी कालीन भारतवर्ष" में इस ग्रन्थ का गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया है। सूत्र ८/४/४ में ६ वनों के नाम पढ़े गये हैं :—
"वनं पुरगामिश्रका सिध्रका सारिका कोटराग्रेभ्यः"—८/४/४

पुरगावण, मिश्रकावण, सिध्रकावण, सारिकावण, कोटरावण और अग्रेवण।

"अग्रेवण संभवतः प्राचीन अग्रजनपद (जिसकी राजधानी अग्रोदक, आधुनिक अगरोहा थी) में स्थित वन का नाम था"
(पृष्ठ ४८)

सूत्र ४/१/१७८ में यौधेयादि ६ संघों या गणों के नाम हैं।

यौधेय के सम्बन्ध में डाक्टर साहब का मत है :—

"यौधेय (५/३/११७)—यौधेय संघ के सम्बन्ध में पाणिनी कृत यह उल्लेख सबसे प्राचीन है। यौधेय भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध हैं। विभिन्न युगों के उनके लेख और सिक्के मिलते हैं। पाणिनी से समुद्र गुप्त के काल, अर्थात् लगभग ८०० वर्षों तक उनका अस्तित्व रहा। ई० पू० २००-२०० ई० के बीच में वे सतलज के पूर्व और यमुना के पश्चिम में फैले हुए थे। महाभारत के अनुसार बहुधान्यक प्रदेश में रोहीतक उनकी राजधानी थी। सुनेत या सुनेत्र जिसका संकलादि गण (४।२।७५) में पाठ है यौधेयों का दूसरा केन्द्र था, जहां उनकी मुद्राएँ मिली हैं।

रोहीतक के पहले संभवतः सुनेत ही उनकी राजधानी थी। पूर्व में होने के कारण सिकन्दर से यौधेयों का संघर्ष नहीं हो सका। प्राचीन यौधेयों के वंशज पंजाब में आधुनिक जोहिए राजपूत हैं।" (पृष्ठ ४५६)

एक स्थूल प्रमाण भी सिक्कों के रूप में मिला है। यौधेय जनपद के सिक्के तथा अग्रोदक या 'अग्र जनपद' के सिक्के भिन्न भिन्न हैं, अतएव ये दो पृथक् जनपद थे। अग्र जनपद की मुद्रा पर के जिस अंक का उल्लेख डा० वासुदेव शरण अग्रवाल के लेख में है उसकी भाषा 'प्राकृत' है। सिक्कों पर प्राकृत के प्रयोग काल के संदर्भ में मैं श्री वासुदेव उपाध्याय का अभिमत उनकी पुस्तक "भारतीय सिक्के" से उद्धृत कर रहा हूं।

सिक्कों की प्राचीनता के सम्बन्ध में—"पुरातत्व की खुदाई में पंचमार्क (Punch Marked-आहत सिक्के) से प्राचीन सिक्के उपलब्ध नहीं हुए हैं अतएव व्यवहार की दृष्टि से इन्हीं को सबसे पुराना सिक्का कहा जा सकता है।...ये पंच मार्क सिक्के ईसा पूर्व ८०० वर्ष में अवश्य तैयार किये जाते थे।" (पृ० ४६)

सिक्कों पर प्राकृत के सम्बन्ध में—"तीसरी सदी से गण सिक्कों पर खरोष्ठी हटाकर सदा ब्राह्मी लिपि का प्रयोग होने लगा। प्राकृत भाषा के स्थान पर संस्कृत को स्थान दिया गया। अधिकतर गण सिक्कों पर एक ओर लेख तथा दूसरी ओर मूर्ति या आकृति खुदी रहती है।" (पृष्ठ ७६)

जनपदों के काल निर्णय के सम्बन्ध में—"उन जनपदों में

गुप्तकाल से पूर्व शासक राज्य करते रहे, परन्तु समुद्रगुप्त के दिग्विजय से सब का अंत हो गया। जनपदों के सिक्के ई० पू० २०० वर्ष से प्रारम्भ होकर तीसरी सदी तक समाप्त हो जाते हैं।" (पृ० ८८)

भविष्य में जब तक आगे टीलों की खुदाई से नये तथ्य सामने नहीं आते तब तक यह तो निश्चित हो जाता है कि अग्र जनपद का समय पाणिनी के अनुसार ई० ५०० पू० से पहले का तथा सिक्कों से पुरा गुप्तकालीन था।

दूसरी बात अग्रसेनजी की नाग जाति से सम्बन्ध होने की है। आज नाग और सर्प एक ही समझे जाते हैं, पर इस एकरूपता या तादात्म्य को प्रतीक रूप में ही समझना चाहिये। वास्तव में यह एक आर्येतर जाति थी, जिसका अपना संगठन, सभ्यता, संस्कृति तथा मान्यताएँ थीं। अरण्य प्रदेश उनका वासस्थान था और सारे आर्यावर्त में उनका प्रसार था। वन सम्पदा से उन्होंने कुछ ऐसे गुप्त रसायन सिद्ध कर लिये थे, जिससे उन्हें दीर्घ आयुष्य, सम्मोहन, विशल्यीकरण, रूप परिवर्तन, अदृश्य हो जाने आदि की सिद्धियां प्राप्त हुई थी। आयुर्वेद में नागार्जुन योगी ने संस्कारयुक्त पारद से कुछ ऐसे गुणों से युक्त 'खेचरी गुटिका' बनाने का विधान बताया है। जो भी हो 'नाग' एक मनुष्य जाति थी, जिसका विकास आर्येतर ढंग से हुआ था।

अग्रसेनजी के प्रसंग में नागों के "कुमुद" और "वासुकी" दो नामों का उल्लेख आया है। महाभारत में कुमुद और वासुकी

के नाम अनेक स्थलों पर आये हैं। यथा :—

"शेषः प्रथमतो जातो वासुकिस्तदनन्तरम्" (आदि ३५/५)

"कुमुदः कुमुदाक्षश्च तित्तिरिर्हलिकस्तथा" (आदि ३५/१५)

"वासुकिस्तक्षकश्चव कर्कोटक धनंजयौ" (उद्योग १०३/६)

"तित्तिरिर्हस्ति भद्रश्च कुमुदो माल्यपिण्डकः" (उ० १०३/१३)

"वासुकेः सर्पराजस्य स्वसारं हृतवांश्च यः

श्रेष्ठो यः प्रतियोधानां सोऽर्जुनः किं करिष्यति" (विराट २/१४)

ये दोनों ही नाग श्रेष्ठ कुलों के नागराज थे। इनकी मित्रता और विवाह सम्बन्ध देव और श्रेष्ठ मानवों में भी होते थे। ऊपर के विराट पर्व के श्लोक में पाण्डव अर्जुन का नागराज वासुकी की बहिन के साथ विवाह का उल्लेख है। पाण्डव भीमसेन को नागों ने ऐसे कुण्डों का रस पिलाया था, जिसके एक के पान से १ हजार हाथियों के बल की प्राप्ति होती थी :—

"रसं पिबेत् कुमारोऽयं त्वयि प्रीते महाबलः।

बलं नागसहस्त्रस्य यस्मिन कुण्डे प्रतिष्ठितम ॥" (आ० १२७/६८)

उद्योग पर्व का उद्धृत श्लोक इन्द्र सारथि मातलि द्वारा अपनी कन्या के हेतु विवाह हेतु नागकुमार के चयन करने के प्रसंग में है। तक्षक नाग देवराज इन्द्र का परम मित्र था। खाण्डव वन दाह करके श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जब इन्द्रप्रस्थ राजधानी के स्थापन के लिये वन को जलाकर भूमि शोधन किया था, तो उस वन की नागबस्ती में रहने वाली नागराज तक्षक की पत्नी को बचाने का इन्द्र द्वारा विफल प्रयत्न भी होता है। अर्जुन को सम्मोहित कर

तक्षक पत्नी अपने पुत्र अश्वसेन को बचा लेती है, पर स्वयं के निष्क्रमण के समय अर्जुन द्वारा मारी जाती है। जनमेजय द्वारा नागों के विनाश के समय इन्द्र द्वारा तक्षक को शरण दी जाती है। जरत्कारू नामक ऋषि ने नागराज वासुकी की बहिन से विवाह किया था, जिससे उत्पन्न पुत्र आस्तीक ऋषि के प्रयत्न से नाग वंश विनष्ट होने से बच सका था। शांति पर्व के अध्याय ३५५ से ३६४ में नागराज पद्मनाभ द्वारा "सिद्ध पुरुष की दिव्य गति" प्राप्त करने का उपदेश एक साधक ब्राह्मण को दिया गया था।

उपर्युक्त दिग्दर्शन का तात्पर्य यह है कि महाभारत कालीन भारतवर्ष में नाग एक अत्यन्त समृद्ध, पौरुष सम्पन्न एवं विशिष्ट कलाओं में निष्णात आर्येतर जाति थी। देवों और श्रेष्ठ पुरुषार्थी मानवों का वे आदर करते थे और उनसे वैवाहिक सम्बन्ध भी करते थे। यदि अग्रसेनजी का सम्बन्ध वास्तव में नागजाति से हुआ था तो हमें यह मानना पड़ेगा कि महाराज अग्रसेन परम पुरुषार्थी व्यक्ति थे। इस सम्भावना का निर्णय महाभारत में दिये गये नागजाति के स्वरूप और चरित्र चित्रण के सन्दर्भ में ही हो सकेगा। इसके लिये हम प्रस्तुत साक्ष्यों को निम्नांकित क्रम में रक्खेंगे।

(१) खाण्डव वन में नाग जाति का निवास स्थान था, यह हम देख चुके हैं। अग्रोहा और यह स्थान दोनों ही कुरुजांगल प्रदेश में हैं और एक से दूसरे की दूरी १०० मील के करीब है।

ऐसी अवस्था में यहां के निवासियों में आपसी सम्पर्क होने की पूर्ण सम्भाव्यता है।

(२) देवराज इन्द्र की नागराज तक्षक से मित्रता थी। दोनों का ही एक दूसरे के कुल एवं परिवार में अबाध प्रवेश रहा होगा। इन्द्र नागकन्या माधवी के रूप सौन्दर्य पर मोहित होकर उसे प्राप्त करना चाहता होगा, पर अग्रसेनजी ने किसी विशेष पुरुषार्थ द्वारा माधवी से विवाह किया होगा। फलतः इन्द्र और अग्रसेनजी में युद्ध का होना और पराजय शुल्क के रूप में इन्द्र का मधुशालिनी नाम्नी अप्सरा का देना असम्भव नहीं प्रतीत होता। इन्द्र बज्रधारी होने पर भी अजेय नहीं था, यह हम खाण्डव वन दाह प्रसंग में देख चुके हैं।

(३) यह भी सम्भव है कि अग्रसेनजी और उनके पुत्रों के भी विवाह नागजाति में हुए हों, क्योंकि अग्रवालों में नागवंशी और राजवंशी दो प्रभेद हैं और परम्परा से नागवंशी श्रेष्ठ माने जाते हैं।

यहाँ एक प्रश्न और भी हो सकता है कि महाभारत युद्ध में सारे भारत की शस्त्रोपजीवी आर्य और अनार्य जातियों ने भाग लिया था, जिसका वर्णन १८ दिन के युद्ध में कहीं-न-कहीं मिलता है। इसमें अग्रगण का नाम कहीं नहीं आया है। हमने देखा है कि कर्ण विजय प्रसंग में कर्ण द्वारा अग्रगण के जीते जाने का उल्लेख है। यह भी सम्भव है कि महाराज अग्रसेन ने महाभारत युद्ध के पूर्व ही "हिंसा धर्म" का परित्याग कर दिया होवे और केवल आत्म रक्षार्थ शस्त्र का प्रयोग करते होवें।

सिकन्दर का आक्रमण भी अग्रोहे पर नहीं हुआ था। यह स्थान सिकन्दर के आक्रमण की सीमा रेखा के पूर्व में बहुत दूरी पर स्थित था। इसकी पुष्टि इसी निबन्ध में उद्धृत डॉक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल के "यौधेय" विषयक वर्णन में होती है। हो सकता है कि पीछे किसी युनानी सरदार का आक्रमण अग्रोहा पर हुआ होवे।

पूरे इतिहास की जानकारी या तो अग्रोहे के टीलों के उत्खनन में उपलब्ध सामग्री से या किसी प्रामाणिक विवरण के मिलने पर ही सम्भव है। पर अग्रसेनजी के जीवन चरित्र में वर्णित नागवंश की जनश्रुति का महाभारत में नाग जाति के वर्णनों से मिलान करने पर जो संगति बैठती है, उससे महाराज अग्रसेन को महाराज युधिष्ठिर का समकालीन मानना चाहिये।

निवेदक :

दीपावली सं० २०३३ वि०

कालीचरण केशान

अग्रवाल जाति की उत्पत्ति और विकास

—डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार

जाति-भेद भारत के सामाजिक जीवन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। जिस प्रकार की जाति-बिरादरियां भारत में हैं, वैसी किसी अन्य देश में नहीं हैं। जाति-भेद के इस विकास के अनेक कारण हैं। किसी एक हेतु से सब जाति-बिरादरियों की उत्पत्ति की व्याख्या नहीं की जा सकती। पर इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान समय की अनेक जातियों का उद्भव प्राचीन गण-राज्यों के जनपदों से हुआ है। खत्री, अरोड़ा, सैनी, मुरई, अग्रवाल, रोहतगी आदि इसी प्रकार की जातियां हैं।

अग्रवाल जाति का उद्भव 'आग्रेय' गण से हुआ है, जिसका सबसे प्राचीन उल्लेख महाभारत में मिलता है। ग्रीक लेखकों ने इसी को 'अगलस्सी' नाम से लिखा है। उत्तर-पश्चिमी भारत के जिन गणराज्यों ने वीरतापूर्वक सिकन्दर का सामना किया था अगलस्सि या आग्रेय गण भी उनमें से एक था। इस आग्रेय गण की राजधानी उस स्थान पर थी, जहां वर्तमान समय में अग्रोहा के खेड़े की सत्ता है। अग्रवाल लोग यह मानते हैं कि उनका आदि-निवास-स्थान अग्रोहा में था और वहां से वे अन्यत्र जा कर बसे हैं। उनकी यह मान्यता वास्तविकता पर आधारित है।

अग्रोहा के जिस खेड़े के नीचे एक पुराने नगर के ध्वंसावशेष दबे पड़े हैं, उनका विस्तार ६५० एकड़ के क्षेत्र में है। अग्रोहा का

यह खेड़ा हिसार (हरियाणा) से तेरह मील की दूरी पर स्थित है। महाभारत में आग्रेय गण का उल्लेख रोहितक गण और मालवगण के बीच में किया गया है। राजा कर्ण ने विजय यात्रा करते हुए पहले रोहितक गण को जीता था, फिर आग्रेय गण को और फिर मालव गण को। इस प्रकार आग्रेय गण की स्थिति रोहितक या रोहतक के पश्चिम में थी। अग्रोहा का खेड़ा रोहतक से साठ मील पश्चिम में है। महाभारत के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में प्रसिद्ध व्याकरण पाणिनी की अष्टाध्यायी से भी आग्रेय गण की सत्ता के संकेत मिलते हैं, क्योंकि सिकन्दर (चौथी सदी ईस्वी पूर्व) के साथ आये ग्रीक लेखकों ने भी 'अगलस्सि' के रूप में इस गणराज्य का उल्लेख किया है, अतः यह माना जा सकता है कि मौर्य साम्राज्य के विस्तार से पूर्व चौथी सदी ई० पू० तक अग्रेय गण की स्वतन्त्र एवम् पृथक् रूप से सत्ता थी।

१९३८-३९ में भारत सरकार के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा अग्रोहा के खेड़े की खुदाई भी प्रारम्भ की गई थी, जिसे सितम्बर १९३९ में महायुद्ध के प्रारम्भ हो जाने के कारण जारी नहीं रखा जा सकता था। पर जो थोड़ी-सी खुदाई उस समय की गई उससे ही अनेक ऐसे सिक्के प्राप्त हो गये, जो अग्रेय गण के हैं। इन सिक्कों पर "अगोद के अगाच जनपदस" (अग्रोद के आग्रेय जनपदस्य) लेख अंकित हैं। अगाच अगोदक आग्रेय का प्राकृतिक रूप है और इन सिक्कों की उपलब्धि से इस बात में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि दूसरी सदी ईस्वी पूर्व में

आग्रेय जनपद भी एक स्वतन्त्र राज्य के रूप में विद्यमान था और उसकी राजधानी अग्रोदक नगरी थी। अग्रोहा अग्रोदक का अपभ्रंश है, जैसे अग्रोदक से अगरोहा और पृथूदक से पैहोआ बने, वैसे ही अग्रोदक ने अग्रोहा का रूप प्राप्त कर लिया। अग्रोहा के खेड़े से इन सिक्कों को उनकी लिपि के आधार पर दूसरी सदी ईस्वी पूर्व का माना जाता है। अग्रोहा के समीप एक विशाल झील थी, जिसके चिह्न अब तक भी ३१० बीघों के क्षेत्र में विद्यमान हैं। इस झील के कारण ही आग्रेय गण की राजधानी या मुख्य नगरी का नाम अग्रोदक रखा गया था।

दूसरी सदी ईस्वी पूर्व में आग्रेय जनपद में किसी वंश क्रमानुगत राजा का शासन नहीं था। वहाँ का शासन एक 'गण' के अधीन था, जिसके सदस्य परिवार में एकत्र होकर शासन कार्य संचालन किया करते थे।

कुछ समय हुए अग्रोहा के भग्नावशेषों से एक ऐसा सिक्का मिला है, जिसमें अग्रोदक और अग्रेय जनपद के साथ 'परिषद्' भी अंकित है, जिससे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि इस सिक्के को अग्रेय गण के परिवार द्वारा जारी किया गया था।

आग्रेय गण के वंशज अग्रवाल लोग जो वैश्य कहलाते हैं और प्रधानतया खेती और वाणिज्य द्वारा अपना निर्वाह करते हैं उसका कारण यह है कि जब अग्रोदक (अगरोहा) में उनके पूर्वजों का अपना राज्य था, तब भी उनका आर्थिक जीवन मुख्यतया वाणिज्य पर ही आधारित था। प्राचीन साहित्य में ऐसे गण-

राज्यों को 'वार्ताशस्त्रोपजीवी' कहा गया है, ऐसे राज्य जिनके निवासियों की आजीविका तो वार्ता (खेती, पशुपालन और वाणिज्य) द्वारा हो और जो आत्मरक्षा के लिये शस्त्रों का धारण करते हों। आग्रेय गण ऐसा ही वार्ताशस्त्रोपजीवी गण था।

अग्रसेन द्वारा जिस आग्रेय जनपद की स्थापना की गई थी, प्रारम्भ में उसमें वंशक्रमानुगत राजाओं का शासन था। अग्रसेन के जिन उत्तराधिकारों या वंशजों ने उनके द्वारा स्थापित राज्य का संचालन किया, उनके नाम भी उपलब्ध हैं। चौथी सदी ईस्वी पूर्व तक अग्रोहा में वंशक्रमानुगत राजाओं के शासन का अन्त होकर गणशासन स्थापित हो गया था।

अग्रवाल जाति की उत्पत्ति तथा विकास के सम्बन्ध में जो ऐतिहासिक तथ्य अब तक ज्ञात हो चुके हैं, उन्हें हमने यहाँ अत्यन्त संक्षेप के साथ दे दिया है। अग्रवाल इतिहास की महत्वपूर्ण सामग्री अग्रोहा के सुविस्तृत खेड़े के नीचे दबी पड़ी है, खुदाई द्वारा जिसे प्रकाश में लाया जा सकता है। अग्रवाल जाति के सम्पन्न एवं समृद्ध लोगों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

('पूर्वी पंजाब', भिवानी, वर्ष १६, अंक ३६ से साभार)

●

हिन्दी विश्वकोश (प्रथम खण्ड)
(प्रथम संस्करण) पृष्ठ ८१

अग्रवाल—

परिचय लेखक

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

यह वैश्य वर्ण के अन्तर्गत एक वृहत् समुदाय या जाति विशेष की संज्ञा है। लोक में इस शब्द का उच्चारण अगरवाल भी किया जाता है। अग्रवाल जाति का घना संनिवेश दक्षिण पूर्वी पंजाब, उत्तरी राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के भौगोलिक क्षेत्रों में पाया जाता है। व्यापार वाणिज्य या अन्य कारणों से देश के दूसरे भागों में भी इस जाति का प्रसार हुआ है, किन्तु प्रसार के इतिहास गत सूत्रों को पीछे की ओर टटोलने से इस बात के स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि पंजाब, राजस्थान और पश्चिमी उत्तर प्रदेश से ही इस जाति के विशिष्ट परिवार पिछले एक सहस्र वर्षों में अन्यत्र फैलते गये हैं।

अग्रवालों की जातीय अनुश्रुति भी ऊपर के तथ्य की ओर संकेत करती है। इनके चारण विवाह के अवसर पर जो शाखोच्चार करते हैं एवं उनके पास जो जातीय परम्परा के अनुश्रुति गत तथ्य सुरक्षित हैं उनसे विदित होता है कि अग्रवाल जाति के मूल पुरुष राजा अग्रसेन थे। उन अग्रसेन के १८ पुत्र थे। उनसे १८ गोत्रों का आरम्भ हुआ। अग्रसेन की राजधानी अगरोहा नगरी थी। इस अनुश्रुति के मूल में ऐतिहासिक तथ्य आंशिक रूप से ही खोजा जा सका है और पुरातत्व के अर्वाचीन उत्खनन

से इस इतिहास को समर्थन प्राप्त हुआ है। इस इतिहास का निर्विवाद अंश यह है कि अग्रवाल जाति का मूल स्थान अग्रोदक नगर में था जिसे इस समय अगरोहा कहा जाता है। दक्षिण पूर्वी पंजाब के हिसार जिले में फतेहाबाद से सिरसा (शैरीषक) को जानेवाली सड़क पर अगरोहा की बस्ती है, जिसके पास ही दूर तक पुराने टीले फैले हुए हैं। भारतीय पुरातत्व विभाग ने वहाँ खुदाई कराई थी। उसमें कुछ पुराने ताँबे के सिक्के मिले थे। उन पर यह लेख पढ़ा गया है :—

"अगोदके अगाच जनपदस"

अर्थात् अगोदक स्थान में अगाच जनपद की मुद्राएँ। अगोदक स्पष्ट ही संस्कृत अग्रोदक का प्राकृत रूप है। जैसे पंजाब के ही दूसरे स्थान पृथूदक का लोक प्रचलित रूप पीहोवा हो गया, वसे ही अग्रोदक अब अगरोहा कहलाता है। अग्रोदक राजधानी थी और उसके चारों ओर एक जनपद राज्य था। सिक्के पर इस जनपद का नाम अगाच दिया हुआ है। इसका संस्कृत रूप अग्रत्य या अग्र होना चाहिये। अग्र जनपद और अग्रोदक में जो जन निवास करता था उसका राजनैतिक संगठन जनपद के युग में पनपने वाले अन्य जनपदों के समान ही रहा होगा।

अग्रवाल जाति के मूल पुरुष अग्रसेन के सम्बन्ध में निश्चित ऐतिहासिक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं। यह जनपद युग की सम्मत प्रथा थी कि प्रत्येक जाति अपने नाम के अनुरूप मूल पुरुष की

कल्पना कर लेती थी। इन जातियों के राजनैतिक संगठनों को श्रेणी कहते थे। श्रेणियां मूलतः शस्त्रोपजीवी जातियाँ थीं। अग्र जनपद की श्रेणी भी इसी प्रकार के राजनतिक संविधान को मानने वाली थी। श्रेणी के संगठन की इकाई कुल था। प्रत्येक कुल में उसका वृद्ध पुरुष मूर्धाभिषिक्त होता था। अग्रश्रेणि के परमश्रेष्ठ कुल पुरुष अग्रसेन के रूप में प्रसिद्ध हुए। शासन की दृष्टि से यह श्रेणी अपने जनपद में उसी प्रकार संघ आदर्श से प्रेरित थी जैसे पाणिनीकालीन अन्य संघ राज्य थे। अग्र जनपद के अंक, लक्षण और मुद्रा उसके निजी प्रभुत्व के द्योतक थे। अनुश्रुति राजा अग्रसेन को क्षत्रिय मानती है। इसकी संगति यह है कि मूलतः यह श्रेणी शस्त्रोपजीवी थी। कालक्रम से कितनी ही श्रेणियां या जातियां कृषि, वाणिज्य आदि वृत्तियों में लग गईं। इस कारण उन्हें वार्ता शस्त्रोपजीवी संघ या श्रेणी कहा जाने लगा था। अर्थशास्त्र में इस प्रकार के संघों का उल्लेख आया है। यह अनुमान संगत जान पड़ता है कि अग्रवाल जाति ने अपने विकास के आरम्भ में ही वार्ता अर्थात् कृषि, पशुपालन और वाणिज्य को प्रधान रूप से अपना लिया था। भारतीय इतिहास में अग्रवाल जाति का उल्लेख लगभग १३वीं शताब्दी से मिलने लगता है। इसमें उसे अग्रोतकान्वय अर्थात् अग्रोतक वंशी कहा गया है। अग्रोतक नाम भी प्राचीन अग्रोदक का सूचक है। अग्रोदक से बाहर फैलते हुए जो अग्रवाल राजस्थान की ओर गये वे मारवाड़ी कहलाये और जो मध्य देश में आ बसे वे देश्य या देसी कहलाए।

(सं० ग्रं० सत्यकेतु विद्यालंकार : अग्रवाल जाति का इतिहास)

अग्रवाल इतिहास परिचय

•

संग्रहकर्त्ता, सम्पादक, प्रकाशक :

बालचन्द मोदी

१८०, हरिसन रोड, कलकत्ता

•

प्रथमवार—चैत्र शुक्ला १ सम्वत् १९७८ वि०

मूल्य : जातीय प्रेम

महावीर प्रसाद पोद्दार
द्वारा मुद्रित
वणिक प्रेस
६०, मिर्जापुर स्ट्रीट,
कलकत्ता

प्रस्तावना

—०—

मैं अपनी इस अग्रवाल जाति का इतिहास जानने का यत्न बहुत दिनों से कर रहा था। इस सम्बन्ध में बहुत सी सामग्री भी एकत्र की थी, परन्तु खेद है कि एकत्रित सामग्री में से जो समय समय पर भाटों द्वारा प्राप्त किया हुआ बड़े महत्व का अंश था वह खो गया। फिर भी जो नोट मैंने कर रखे थे उनके तथा प्राप्त कई एक पुस्तकों, छोटे मोटे लेखों, प्रचलित प्रथा और जन-श्रुतियों के आधार पर ही मैंने यह छोटी सी पुस्तक लिखी है। अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ी अग्रवाल महासभा के तृतीय महाधिवेशन के सम्मुख इसे उपस्थित करने की प्रबल इच्छा से इसे प्रकाशित करने में मुझे बहुत ही शीघ्रता करनी पड़ी है। एक तो यह ऐतिहासिक विषय, उपकरणों का अभाव, पुस्तक लिखने के अभ्यास की कमी आदि कई एक बातें ऐसी हैं जिनसे मुझे पूर्ण आशंका है कि इसमें अनेक त्रुटियाँ रह गई होंगी। परन्तु आशा है कि सहृदय पाठक "हंस क्षीर नीर विवेक न्याय" से इसके सार भाग को ग्रहण करेंगे।

यद्यपि यह अग्रवाल जाति का सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास नहीं है, परिचय मात्र है, इसलिये अवश्य यह छोटी सी पुस्तक इतिहास ग्रंथ होने का दावा नहीं कर सकती, तथापि मेरा यह विश्वास है कि जाति के विषय में कुछ न जानने की अपेक्षा इसमें बहुत सी ऐसी बातें मिल जायेगी जो कि जातीय गौरव के भावों को प्रस्फुटित कर सकेंगी।

मुझे यह भी विश्वास है कि पहले प्रकरण में जिन पुस्तकों के नाम मैंने बताये हैं वे पुस्तकें संग्रह कर मन्थन की जायेंगी तो निश्चय ही सर्वाङ्गपूर्ण इतिहास बन सकेगा।

यहां पर यह कह देना भी बहुत जरूरी है कि इस पुस्तक के लिखने में "दैनिक भारत मित्र" के सुयोग्य सम्पादक मेरे परम श्रद्धेय मित्र पं० लक्ष्मीनारायणजी गर्दे यदि सहायक न होते तो शायद ही यह पुस्तक इस रूप में प्रकाशित होती। उन्होंने मुझे जो सहायता दी है उनका मैं बड़ा भारी आभार मानता हूँ।

१८०, हरीसन रोड,
कलकत्ता
चैत्र शु० १ संवत् १९७८ वि०

जातीय सेवक—
बालचन्द्र मोदी

अग्रवाल इतिहास परिचय

इतिहास और उसके साधन

संसार में कौन ऐसा मनुष्य होगा जिसे अपने पूर्वपुरुषों के चरित्र और पराक्रम जानने की इच्छा न हो? मनुष्य में स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है और जिज्ञासा से ही ज्ञान का साधन आरंभ होता है। इसीलिये ग्रंथ लेखन की प्राचीन परिपाटी के अनुसार ग्रंथ के आरंभ में ही जिज्ञासा का स्पष्ट निर्देश रहता है—आज हम अग्रवाल जाति के इतिहास का जो परिचय प्राप्त करना चाहते हैं उसका भी कारण जिज्ञासा ही है—हम यह जानना चाहते हैं कि अग्रवाल जाति के पूर्व पुरुष कौन थे? वे कैसे पराक्रमी थे और उन्होंने किस प्रकार अपना नाम अजर-अमर कर रक्खा है? इतिहास का एक हेतु जिज्ञासा है। परन्तु केवल यही नहीं और भी है।

अपने पूर्व पुरुषों की विमल चरित्र गाथा सुनने से चित्त को हर्ष होता है और इसलिये मन की प्रसन्नता भी इतिहास का दूसरा उपयोग माना गया है। परन्तु मन की प्रसन्नता का और भी उपाय है। उपन्यास और नाटक से भी मन का रंजन होता है। तमाशों से भी दिल बहलता है। विषय सुख से भी क्षण भर चित्त को आनन्द होता है। परन्तु इतिहास ऐसे क्षणिक सुख का साधन नहीं है। इतिहास वह साधन है जिससे पूर्व पुरुषों के दर्शन होते हैं, और उनके चरित्र यह बतलाते हैं कि हमने तुम्हारे

लिये क्या किया है और आगे तुम्हें क्या करना करना चाहिये। किसी समाज का इतिहास उस समाज की गति का चित्र होता है जिससे यह मालूम होता है कि वह समाज किस स्थान से किस रास्ते कहां तक पहुंचा है। इतिहास में समाज के जीवन की बातों का अनुभव इकट्ठा हुआ रहता है, जो पिछली बातें बतलाकर आगे वालों को सचेत और सावधान करता है। इतिहास एक प्रदीप है जो आगे का मार्ग दिखलाता है। एक अत्यंत सुप्रसिद्ध ग्रंथकार ने कहा है कि जिस जाति का पूर्व इतिहास कुछ नहीं है उसका भविष्य भी अन्धकारमय है और जिस जाति का पूर्व इतिहास है उसका भविष्य भी बहुत भव्य है। इसका कारण यही है कि इतिहास जाति के जीवन मार्ग का पथ प्रकाशक प्रदीप है जो अपने प्रकाश से चित्त को आह्लादित कर मार्ग दिखलाता रहता है। जो जाति इतिहास के प्रकाश में आगे बढ़ती है वही अग्रसर होती है। पर जिसके जीवनमार्ग में कोई ऐसा प्रकाश नहीं है वह मार्ग भ्रष्ट होकर भटकने लगती है अथवा यों कहिये कि जिस जाति के खड़े होने के लिये इतिहास की आधार भूमि ही नहीं है, वह इस जीवन संग्राम में ठहर नहीं सकती क्योंकि ठहरने की जगह तो इतिहास है। इतिहास पूर्व पुरुषों का संचित किया हुआ पुण्यबल है और यह इतिहास जिस जाति का जितना प्राचीन होता है उतना ही उसका पुण्यबल अधिक होता है। जिसका जितना ही पुण्यबल होता है उसका भविष्य भी उतना ही उज्ज्वल होता है। यही पुण्यबल-यही इतिहास उन्नति का साधन

है। इस प्रकार इतिहास के उपयोग अनेक होने पर भी उसका मुख्य हेतु भावी पीढ़ियों की उन्नति ही है। इसी दृष्टि से इतिहास लिखा जाता है और इतिहास जानने की जो जिज्ञासा मनुष्य में स्वभावतः होती है उसका कारण भी यही है।

अग्रवाल जाति के इतिहास का भी यही हेतु है यह कहने की आवश्यकता नहीं। अबतक कोई ऐसा ग्रन्थ नहीं बना है जिसे आद्यन्त पढ़कर हम अग्रवाल जाति का इतिहास जान जायें। पर जिज्ञासा ही ज्ञान का साधन है और यह जितनी प्रबल होती है, ज्ञान की भी उतनी ही वृद्धि होती है। इतिहास के साधन ढूंढ़ने से मिलते हैं और इन साधनों को एकत्र करने से ही इतिहास बनता है। सबसे पहले यह ध्यान में रखना चाहिये कि अग्रवालों का इतिहास भारत के इतिहास का ही एक अंग है और भारत के इतिहास का कलेवर इतना बड़ा है कि उसका विस्तार कहाँ तक है यह बतलाना बड़ा ही कठिन है। क्योंकि इतिहास बड़ा ही व्यापक विषय है। इसमें जाति के चरित्र की सभी बातें आती है। जिस समय का वर्णन इतिहास में हो रहा हो उस समय लोगों के आचार-विचार क्या थे, खान-पान और रहन-सहन क्या था, किस विद्या का प्राधान्य था और उसका कितना प्रचार था, लोगों की सामाजिक मानसिक और नैतिक अवस्था क्या थी इत्यादि चरित्र की सभी बातें इतिहास में आती हैं और इन सब बातों का वर्णन जिस ग्रन्थ में किया जाता है उसी को इतिहास कहते हैं। केवल वंशावली या लड़ाइयों के वर्णन को

इतिहास नहीं कहते हैं। इतिहास जाति के सर्वांगीण चरित्र का नाम है। भारत का ऐसा सर्वांगीण चरित्र चारों युगों के अथाह समुद्र में छिपा हुआ है। ऐसे सर्वांगीण चरित्र के ज्ञान के साधनों का विचार करने से राजतरंगिणीकार के साथ यही कहना पड़ता है कि :—

कोऽन्यः कालमतिक्रान्तं नेतुं प्रत्यक्षतां क्षमः।
कविं प्रजापतिंत्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः॥

'सृष्टि निर्माण करने वाले ब्रह्मा और कवि को छोड़' गत काल को फिर से नेत्रों के सामने ला खड़ा कर देने की सामर्थ्य और किस में है? तथापि मानवी बुद्धि और अनुसंधान शक्ति जहाँ तक पहुंचती है वहाँ तक अपना इतिहास आप जानने का प्रयत्न प्रत्येक प्रगतिशील जाति अवश्य करती है और उसी से उसकी प्रगति भी होती है।

भारतवर्ष में किसी भी जाति के इतिहास के साधन प्रायः समान ही हैं। अग्रवाल जाति हिन्दू जाति का ही एक अंग है और उसका इतिहास भी हिन्दू जाति के इतिहास का ही एक भाग है और यह भाग समस्त जाति के इतिहास में इतना मिला हुआ है कि उसे अलग करके दिखलाना बड़ा ही कठिन है। दूसरी बात यह कि अग्रवाल जाति हिन्दू जाति के वृक्ष की एक शाखा है और यह शाखा अवश्य ही हिन्दू जाति के प्राचीनत्व के विचार से अर्वाचीन है और इसलिये अग्रवाल जाति का इतिहास मूल हिन्दू जाति का ही इतिहास है अर्थात्

अग्रवाल जाति के इतिहास का परिचय पाने के पूर्व हिन्दू जाति का इतिहास जानना आवश्यक है। परन्तु जब तक हिन्दू जाति का सर्वाङ्गपूर्ण और क्रमबद्ध इतिहास नहीं बनता तब तक अग्रवाल जाति का इतिहास भी अपूर्ण ही रहेगा। तथापि जो कुछ इतिहास मिलता है उसी को जानकर हम आगे बढ़ें तो यह भी "अकरणान्मन्द करणं श्रेयः (कुछ नहीं से कुछ तो अच्छा)" के न्याय से उचित और आवश्यक है।

अब यह सोचें कि अग्रवालों के स्वतंत्र इतिहास के साधन क्या हैं? समस्त हिन्दू जाति का इतिहास तो मूल है ही। अब इसके बाद यह मालूम होता है कि संस्कृत पाली और प्राकृत ग्रंथों को देखने से इतिहास की बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है। सबसे पहले यही प्रश्न होता है कि अग्रवाल जाति की सृष्टि का काल कौन सा है—कब से यह जाति एक स्वतन्त्र वैश्य जाति हुई है अथवा इस जाति के मूल पुरुष जो अग्रसेन हुए वे किस समय हुए। परन्तु इस प्रश्न का जो उत्तर मिलता है वह इतिहस जिज्ञासु की जिज्ञासा को तृप्त नहीं करता है। सम्भव है कि प्राचीन ग्रंथों के मन्थन से इसका उत्तर निकल आवे, सम्भव है कि यह प्रमाणित हो कि महाराज अग्रसेन त्रेता युग में हुए हों अथवा यही सिद्ध हो कि कलि में ही हुए हों। इन ग्रन्थों से उनके समय पर प्रकाश भी पड़ सकता है और यह मालूम हो सकता है कि उस समय हिन्दू जाति की सभ्यता का अन्तरंग और बहिरंग क्या था, आचार-विचार क्या थे, वर्णाश्रम बंधन किस प्रकार का था। इसी

प्रकार अगरोहा अथवा ऐसे ही अन्य स्थानों में जाने से शिला-लेख अथवा ताम्रपत्र मिलें जिनसे ये बातें मालूम हों। इसके अतिरिक्त अग्रवाल वंश के सम्बन्ध में यत्र तत्र अनेक हस्तलिखित ग्रन्थ हैं—ऐसा कहते हैं। भाटों के पास भी वंशावलियाँ मौजूद हैं जिनके परस्पर विरोध में से भी सत्यासत्य का निर्णय किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त प्रचलित प्रथाओं से भी इतिहास जानने में बड़ी मदद मिलती है। अग्रवालों की वर्तमान प्रथाओं में कई एक बड़ी रहस्यमय हैं और उनमें ऐतिहासिक बातें छिपी हुई मालूम होती हैं। जो हस्तलिखित और मुद्रित ग्रन्थ हमें मालूम हुए हैं उनकी तालिका नीचे देते हैं—इनमें कितने ही ग्रन्थ हमें प्राप्त हुए और कितनों की प्राप्त करने को चेष्टा हो रही है।

(१) भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र लिखित अग्रवालों की उत्पत्ति।

(२) अग्रवाल उत्पत्ति—लाला रामचन्द्र, अजमेर अग्रवाल सभा।

(३) वैश्य अग्रवाल इतिहास (उर्दू)—अग्रवाल राजवंश सभा मेरठ।

(४) महाराज अग्रसेन का जीवन चरित्र—हमदर्द हिन्द प्रेस, मेरठ।

(५) अग्रपुराण—जसराज भाट लिखित। जो कहते हैं अगरोहे के भाटों के पास है।

(६) अग्रयश—कृष्णायतराय सिन्धपत रत्नगढ़ (विलासपुर) के यहाँ है।

(७) रायन अगरोहा— } ये दोनों पुस्तकें अजयगढ़ के प्रेमसुख
(८) कंसासुर युद्ध — } शुक्ल के पास हैं।

(९) अग्रवालवंश कौमुदी—लाला सुखानन्द मालवी कृत।

(१०) संक्षेप वृत्तान्त मुंशी अनूपसिंह लिखित।

(११) "मुख्तसिरहालात महाराजा अग्रसेन" जफर प्रेस मुरादाबाद से प्रकाशित।

(१२) अग्रवंश प्रकाश।

(१३) "खैर ख़ाहे वैश्य" मासिक पत्र सन् १८८५ मई मास की संख्या में मुन्शी रामनाथ साहब लिखित लेख जो कि ६-७ वर्षों की खोज से लिखा गया था।

(१४) कलीमखान सूर्य्य वंश (प्रेमदत्त भाट के पास है)

(१५) "कवीवर तुलसीराय की कथा" जो कि संवत् १९१३ वि० में कही गई थी वह सम्वत् १९६६ में मुरादाबाद में छपी है।

(१६) सिकन्दर आजम का जीवन चरित्र।

(१७) राजा समरजीत (धारानगरी) का वृत्तान्त

(१८) काश्मीर जम्मू का स्वतंत्र इतिहास।

(१९) राजतरंगणी।

(२०) वंशावली गौठाकुर और विशुन ठाकुर।

(२१) वर्तमान अग्रावात और अग्रहरी राजपूतों की वंशावली।

(२२) "ब्रह्मचर्यवर्ण उत्पत्ति" पं० रामगोपाल लाहौर।

(२३) "वर्ण उत्पत्ति" जिसका सप्तम् दशम्, एकादशम् तीन भाग जीर्ण अवस्था में रामधन ब्राह्मण चंगलपेट मद्रास के पास है।

(४) "कारनामय बख्तयार खिलजी" (फारसी) जो कि रत्न साहु सूपी नीमाहड रियासत टौंक के पास है।

(२५) "सूर्य सिद्धान्त" जिससे समय निर्धारित करने में सहायता मिलेगी।

(२६) महाभारत।

(२७) भविष्योत्तर पुराण।

(२८) लक्ष्मी व्रत कथा।

(२९) "वरणांवली" महाराजा पृथ्वीराज तथा चन्दभाट लिखित इसके कई भाग महाराज रींवा के लाईब्रेरी में हैं।

(३०) "वंशावली राजा मानमोरी" मोरामल इसी कुल में हुआ है। यह वंशावली राणा उदयपुर चित्तौड़गढ़ के प्राचीन पुस्तकालय में तथा कृष्णशास्त्री चित्तौड़गढ़ के पास भी बताई जाती है।

(३१) अग्नि पुराण।

(३२) विक्रम जीवन चरित्र।

(३३) राजा चेतराम व रत्नसिंह की वंशावली जो कि मुकलमपुरा के राना के पास बताते हैं।

(३४) "ब्रह्मचर्यगुप्त" (संस्कृत में) नन्दकरण नाम के व्यक्ति के पास मद्रास में है।

(३५) "महाराजा जयसिंह का निर्णय" वैश्यों में अग्रवाल क्यों मुखिया हैं इस विषय का निर्णय किया गया था। जयपुर राज पुस्तकालय।

(३६) जागों और भाटों के पास के प्राचीन हस्तलिखित खुदरा दो लेख और उनका मौखिक वार्तालाप।

(३७) जनश्रुति—शिलालेखादि—ताम्रपत्र।

(३८) ब्रह्मचारी ब्रह्मानन्द और अवधबिहारीजी के लेख और कविता आदि।

(३९) अग्रवाल कुल भूषण महाराजा नसीपुर का प्राचीन पुस्तकालय।

(४०) श्रीनाभाकृत "भक्तमाल"।

(४१) पुराणों में रंकण और त्रिलोचन वैश्य की कथा तथा वसु महात्म्य।

(४२) रंकण वंकण का जीवन चरित्र जो कि गणेशदास साधु व्यावर ने संग्रह किया है।

(४३) अग्रोहे के खण्डहर और उसकी खुदाई।

(४४) अग्रोहे के खण्डहरों में मिले हुए सिक्के जो कि बाबू देवीबक्सजी सराफ मंडावा के पास हैं।

(४५) बादशाह हुमायू और हेमचन्द्र का वृतांत।

(४६) बादशाह अकबर और मधुसाह।

(४७) जैनियों के हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथ, इनसे बहुत कुछ पता चलने का आभास मिला है।

(४८) सिरोही राजा का इतिहास।

(४९) हिन्दी विश्वकोष बागबाजार विश्वकोष लेन नं० ९ में मिलता है।

(५०) वैश्य कुलभूषण इतिहास 'कल्पद्रुम' गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर प्रेस कल्याण बम्बई में मिलता है।

(५१) प्राचीन इतिहास की सामग्री लेखक पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, वैदिक यंत्रालय, अजमेर।

(५२) जाति भास्कर, लेखक पण्डित ज्वाला प्रसादजी मिश्र वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई में छपा है।

(५३) ऐतिहासिक ग्रन्थमाला, वैदिक यन्त्रालय अजमेर।

(५४) नेपाल का प्राचीन इतिहास, खड्ग विलास प्रेस बांकीपुर।

(५५) अग्रवाल वैश्योत्कर्ष।

(५६) मि० शेरिंग (Sherring), मि० रिजली (Sir Risly), मि० क्रुक (Crooke), सर हेनरी ईलियट का शब्द संग्रह और मि० ह्यूम की खोज में भी अग्रवाल जाति का वर्णन मिलता है।

(५७) रानीगंज निवासी श्रीमान् बाबू जगन्नाथजी झुनझुनु वाले संग्रहीत उपकरण।

इन सब साधनों को मथ कर अग्रवाल जाति का यदि इतिहास लिखा जायगा तो वह एक अपूर्व ग्रन्थ होगा—इसमें संदेह नहीं। ऊपर जिन ग्रंथों के नाम दिये गये हैं उनमें से अनेकों के नाम बहाल सिंह कृत उर्दू "अग्रवाल इतिहास" में आधार के तौर पर निर्दिष्ट हुए हैं और यह मालूम होता है कि "अग्रवाल इतिहास" के लेखक ने इन ग्रन्थों को देखा है। अग्रवाल भूषण भारतेन्दुजी ने जो "अग्रवालों की उत्पत्ति" लिखी है उसका आधार उन्होंने परम्परागत जनश्रुति, प्राचीन लेख और भविष्यपुराणान्तर्गत श्री महालक्ष्मी व्रत की कथा बताया है। इन दोनों पुस्तकों को भी हमने देखा है। इनके अतिरिक्त अनूप सिंह राजवंशी कृत

"संक्षेप वृत्तांत" सुखानन्द मालवी नागवंशी कृत "अग्रवाल वंश कौमुदी", अजमेर अग्रवाल सभा द्वारा प्रकाशित 'अग्रवाल उत्पत्ति' और मुरादाबाद वासी बांके लाल कृत "मुख्तसिर हालात महाराज अग्रसेन" आदि छपी हुई पुस्तकें भी हमने देखी हैं। इन सब पुस्तकों के देखने के पश्चात् हमें यही कहना पड़ता है कि यद्यपि इन लेखकों ने बड़े परिश्रम के साथ अग्रवालों के इतिहास का दिग्दर्शन किया है तथापि यह दिग्दर्शन ही है, इतिहास नहीं और इतिहास का काम अभी बाकी ही है। इन पुस्तकों से अग्रवालों के इतिहास का जो परिचय मिलता है वह अवश्य ही उत्साह और जिज्ञासा को बढ़ाने वाला है।

इन पुस्तकों में परस्पर बहुत मत विरोध है, अनेक स्थानों में घटनाओं का भी विरोध है। इससे सत्यासत्य का निर्णय करके इन्हीं पुस्तकों से प्राप्त हो सकने वाले इतिहास का परिचय समस्त जाति को करा देने का काम भी महान् न होने पर भी "अकरणान्मन्द करणं श्रेयः" के न्याय से समाज को अवश्य स्वीकृत होगा। हमने तो केवल इस कंटकाकीर्ण सामग्री को एकत्र करके उसे इस रूप में समाज के सामने रखने का यत्न किया है। अग्रवाल जाति के सम्बन्ध में अब तक जो बातें उपलब्ध हुई हैं वे मालूम हो जायें और अपना इतिहास जानने की जिज्ञासा जाति में उत्पन्न हो अर्थात् यह इतिहास का दिग्दर्शन या साधारण परिचय करा देने का यत्न है।

अग्रवाल जन्मतः वैश्य नहीं थे। अपने गुण कर्म के कारण ही

वैश्य कहलाते हैं इस बात का परिचय मिलता है। अग्रवालों के मूल पुरुष अग्रसेन एक महान् प्रतापी क्षत्रिय राजा थे। उनके वंश में अनेक इतिहास प्रसिद्ध पुरुष हुए हैं। राज वंश और नाग वंश दोनों ही उन्हीं के वंशज हैं। वंश निर्णय के प्रसंग में कुछ रहस्यमय बातें हैं, जैसे राजा बासक की कन्याओं का रात के समय सर्पिणी हो जाना इत्यादि। यह भी परिचय मिलता है कि अगरोहा अग्रवालों के अत्यन्त गौरव के समय प्रधान वास स्थान था। अब यह अगरोहा उजड़ गया है पर प्राचीन गौरव के स्मृति चिह्न अब तक बाकी हैं। पूरा इतिहास यद्यपि अभी विद्यमान नहीं है तथापि यथा प्राप्त निर्विवाद इतिहास क्रमबद्ध रूप से सामने रखने का यत्न किया जा सकता है और प्राचीन तथा अर्वाचीन अग्रवालों की परस्पर तुलना करने से उस इतिहास से बहुत कुछ शिक्षा मिल सकती है। इस प्रकार अग्रवाल इतिहास का परिचय आगे के प्रकरणों में दिया जायेगा।

[२]

अग्रवाल जाति की उत्पत्ति

सबसे पहले अग्रवाल जाति की उत्पत्ति के विषय में कुछ लिखना आवश्यक है। "अग्रवाल उत्पत्ति" के लेखक ने चार प्रमाण विकल्प रूप से दिये हैं—(१) जो वैश्य अगर बेचते थे वे अगर बेचने के कारण अगरवाल कहलाये (२) महाराज अग्रसेन ऐसे प्रतापी राजा थे कि उनके बाद उन्हीं के नाम से उनका वंश

चला (३) अगरोहे में रहने के कारण इनका नाम अगरोहे वाले और फिर अगरवाले हुआ (४) अग्र अर्थात् पूर्व कालवत् सद्धर-माचरण करने के कारण इन्हें अग्रवाल की संज्ञा प्राप्त हुई। इनमें से पहला और चौथा कारण महज खींचातानी या जबर्दस्ती का स्पष्ट ही मालूम होता है। इसलिये हमें उसका विचार करने की आवश्यकता जान नहीं पड़ती। ये दोनों कारण कारणों की केवल संख्या बढ़ाने के लिये हैं। इतना ही कहना पर्याप्त है। दूसरा और तीसरा कारण विचारणीय है। यदि हम यह स्वीकार कर लें कि महाराज अग्रसेन के नाम से ही अग्रवाल वंश चला है तो तीसरे कारण के विचार की भी आवश्यकता नहीं रहती। परन्तु वंश का नाम पूर्व पुरुष के नाम से भी जैसे चलता है वैसे ही स्थान के नाम से भी चलता है, जैसे चुरू के रहने वाले चुरूवाले इत्यादि। इसलिये अगरोहे के नाम से अग्रवाल नाम पड़े तो यह हो सकता है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका विचार करना चाहिये। अगरोहे से अग्रवाल हुए यह मान लें तो यह प्रश्न होता है कि अगरोहे का नाम अगरोहा कैसे हुआ? यदि महाराज अग्रसेन के नाम से अगरोहा बसा तो अग्रवाल वंश का भी सम्बन्ध सीधे उन्हीं से न लगाकर अगरोहे का सहारा लेने की क्या जरूरत है? दूसरी बात यह कि अगरोहा कब बसा? महाराज अग्रसेन ने ही इसे बसाया या उनके नाम से यह पीछे बसा, इस विषय में मतभेद है। "मुख्तसर हालात महाराज अग्रसेन" के लेखक ने भाटों के मुँह सुनी कथा के आधार पर लिखा है कि अगरोहा

अग्रसेन के वंशजों ने बसाया। तीसरी बात यह कि भारतेन्दुजी के कथनानुसार, महाराज अग्रसेन ने उत्तर में पंजाब से लेकर दक्षिण में आगरे तक अपना राज्य विस्तार किया था और इस राज्य में सर्वत्र ही अग्रवाल बसते थे। इन बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि अग्रवालों के मूल पुरुष महाराज अग्रसेन के नाम से ही अग्रवाल वंश चला है।

महाराज अग्रसेन बड़े प्रतापी क्षत्रिय राजा हुए। इनके प्रताप का वर्णन प्रसंगानुसार आगे आवेगा। इससे पहले यह देख लें कि इनके जन्मकाल के सम्बन्ध में किसका क्या मत है। "अग्रवाल वंश कौमुदीकार" ने लिखा है कि महाराज अग्रसेन का जन्म त्रेता युग के प्रथम चरण में हुआ। "जाति भास्कर" में इस सम्बन्ध का एक पुराना दोहा भी दिया है :—

बद मिगसर शनि पंचमी, त्रेता पहले चर्ण।
अग्रवार उत्पन्न भये, सुनभाखी शिवकर्न॥

अर्थात् मार्ग शीर्ष बदी पंचमी शनिवार के दिन "अग्रवार" उत्पन्न हुए ऐसा शिवकर्न कवि सुनाते हैं। पर उस दिन "अग्रवार" उत्पन्न हुए या अग्रनाथ इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये कविजी मौजूद नहीं है। परन्तु इसका उन्होंने कोई खास प्रमाण नहीं दिया है। अनूप सिंह राजवंशी ने लिखा है कि इनके जन्म के समय युधिष्ठिर महाराज के राजकाल को १५५६ वर्ष बीत चुके थे अर्थात् इन दो मतों के बीच पूरे एक युग का फासला है। "मुख्तसर हालात महाराज अग्रसेन" के लेखक का कहना है कि

महाराज अग्रसेन का जन्म आज से ७४३७ वर्ष पहले हुआ। यह पुस्तक १९१० में लिखी गई है इसलिये इस हिसाब से अब ७४४७ वर्ष हुए। इसमें कौन मत ठीक है और कौन गलत इसका निश्चय करना भावी इतिहासकार का काम है। अभी इतनी सामग्री उपलब्ध नहीं है, जिससे अग्रसेन का जन्मकाल निश्चित किया जा सके। परन्तु 'वैश्य अग्रवाल इतिहास" के लेखक ने महाराज अग्रसेन की वंश शाखाओं का जो वर्णन किया है उसमें महाभारत कालीन कंस, जरासंध, शिशुपाल आदि प्रसिद्ध पुरुषों के नाम आये हैं। लिखा है कि महाराज अग्रसेन के पड़पोते रणवीरजीत ने मथुरा के राजा कंस के साथ युद्ध किया था। कंस—रणवीरजीत युद्ध की कथा यद्यपि श्री मदभागवत, हरि विजय अथवा महाभारत में नहीं है और यह कथा भी अप्रसिद्ध है तथापि अजयगढ़ के प्रेमसुख शुक्ल के पास वाले कंसासुर युद्ध के आधार पर लिखी हुई यह घटना यदि सत्य हो तो यह निर्विवाद हो जाता है कि महाराज अग्रसेन कंस के चार पीढ़ी पहले हुए। कंस का काल यदि द्वापर का शेष याने ५०२१ वर्ष निश्चित होता है। यदि इसमें चार पीढ़ी के चार सौ वर्ष बढ़ा दें तो महाराज अग्रसेन का काल ५४०० वर्ष से पहले का प्रमाणित होता है।

अग्रवाल वैश्यों की उत्पत्ति के प्रकरण में

अब दूसरी बात यह भी देख लेनी चाहिये की अग्रसेन तो क्षत्रिय थे, फिर अग्रवाल जाति वैश्य क्यों कहलाती है। इस विषय में भी भिन्न भिन्न बातें सुनने में आती हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अग्रसेन के मूल पुरुष धनपाल को ही वैश्यों में गिना है। पर फिर धनपाल के पुत्र शिव के वंश में विश्य नाम का कोई राजा हुआ जिसका राज जम्बू द्वीप में था। उसी विश्य से वैश्य हुए यह भी भारतेन्दुजी का कहना है। पर यदि विश्य ही वैश्यों के मूल पुरुष होते तो या विश्य शब्द से वैश्य शब्द की उत्पत्ति हुई होती तो विश्य राजा उतने ही प्रसिद्ध होते जितने स्वयं भगवान मनु हैं।

एक मत यह है कि अग्रसेन के पौत्रों ने ऋषियों की आज्ञा से जीवहिंसा से विरत हो कर क्षात्र धर्म छोड़ वैश्य धर्म ग्रहण किया, तब से अग्रसेन के वंश वालों से क्षत्रियों का रक्त सम्बन्ध छूट गया और वे वैश्य कहलाने लगे तथा इनका विवाह सम्बन्ध इसी नवीन वैश्य जाति के अन्दर होने लगा। इस पर कई प्रश्न उठते हैं। जैसे जिन ऋषियों ने जीवहिंसा से विरत होने का जो उपदेश दिया वे ऋषि जैन संप्रदाय के आचार्य तो नहीं थे और उन्होंने उस उपदेश से जैन धर्म की दीक्षा तो नहीं दी? दूसरा मत यह है कि अग्रसेन ने १७ यज्ञ किये और जब १८ वां यज्ञ करने लगे तो उनको जीव हिंसा से ग्लानि हो गयी और उनके राजगुरु गर्ग मुनि ने उन्हें वैश्य धर्म ग्रहण करने का उपदेश दिया। भारतेन्दुजी ने यह भी लिखा है कि महाराज अग्रसेन ने दैवी हिंसा बन्द की। फिर यह भी एक मत है कि अगरोहे का जब ध्वंस हुआ तब वहाँ से लोग भाग कर दूर जा बसे और जीविका निर्वाह के लिये कृषि, व्यापार आदि करने लगे और अपने को

"अग्रवाल वैश्य वंशी" कहने लगे। इस विषय का निर्णय भी पर्याप्त सामग्री के अभाव से नहीं हो सकता है। परन्तु इतनी बात तो निर्विवाद है कि अग्रवाल जाति जन्मतः क्षत्रिय है और गुण कर्म से ही वैश्यत्व को प्राप्त हुई है। आज भी अग्रवालों के यहाँ परम्परा से छत्र चामर का जो अधिकार चला आया है वह भी इस बात का साक्षी है और अग्रसेन के आगे कई पीढ़ियों तक इनके खानदान में राजपाट का पूर्ण अधिकार था यह बात भी स्पष्ट दीख पड़ती है। अग्रवाल वैश्य जाति का इतिहास वैश्य कर्म का ही इतिहास नहीं है, बल्कि इस जाति का इतिहास प्रधानतः क्षात्र धर्म का ही इतिहास है।

अन्त में एक बात और लिख देनी है। वह यह कि अग्रसेन के नाम से ही यद्यपि अग्रवाल वंश चला है और अग्रसेन ही इसके मूल पुरुष हैं तथापि अग्रसेन के जो संतति हुई उसकी उत्पत्ति यज्ञ से हैं और यज्ञों से उत्पन्न पुत्रों के गोत्र भी उन ऋषियों के नाम से हैं, जिन्होंने ये यज्ञ कराये थे।

[३]

पूर्वजों का वृत्तांत

अग्रवालों के मूल पुरुष अग्रसेन के पुरखों की परम्परा पूरी नहीं मिलती। जो मिलती है उसमें भी संदिग्धता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी ने पुराण ग्रन्थों के आधार पर लिखा है कि "पहला मनुष्य जो वैश्यों में हुआ उसका नाम धनपाल था।" इन्हीं धनपाल

के वंश में अग्रसेन हुए हैं। परन्तु धनपाल स्वयं वैश्य थे यह कहाँ तक ठीक है यह एक सोचने की बात है। यदि धनपाल वैश्य ही थे तो अग्रसेन अमुक कारण से वैश्य हुए यह कहने की आवश्यकता ही नहीं रहती। परन्तु यदि धनपाल वैश्य होते तो ब्राह्मण उन्हें राज पर क्यों बैठाते? प्राचीन समय में आजकल की तरह वैश्य प्रधान राज्य नहीं था। क्षत्रिय ही राजा होते थे। परन्तु भारतेन्दुजी के कथन का अभिप्राय दूसरा भी हो सकता है जो उनके शब्दों से स्पष्ट प्रकट नहीं होता। संभव है कि उनके कहने का यह मतलब हो कि वर्तमान अग्रवाल वैश्य जिस वंश के हैं उस वंश के पुरखा धनपाल थे। आगे चलकर स्वयं भारतेन्दुजी ने यह भी लिखा है कि विश्य राजा के नाम से वैश्य हुए। पर यह भी कवि कल्पना ही मालूम होती है। तात्पर्य अग्रवालों के पूर्व पुरुष क्षत्रिय ही थे और अग्रवालों का घराना राज घराना है जिसने समय के फेर से वैश्य वृत्ति धारण की है। अस्तु भारतेन्दुजी ने जो अनुसंधान किया उसके अनुसार धनपाल को ब्राह्मणों ने प्रताप नगर का राज्य प्रदान किया था। धनपाल के आठ पुत्र और एक कन्या थी। कन्या का नाम मुकुटा था और याज्ञवल्क्य ऋषि के साथ इसका विवाह हुआ था। इस कन्या के अतिरिक्त धनपाल के आठ पुत्र थे जिनके नाम—शिव, नल, अनल, नन्द, कुन्द, कुमुद, वल्लभ और शेखर हैं। अश्वविद्या शालि होत्र के आचार्य विशाल राजा ने अपनी आठ बेटियों को इन आठ पुत्रों से व्याह दिया। उन आठ बेटियों के नाम ये हैं—

पद्मावती. मालती, कान्ति, शुभ्रा, भव्या, भवा, रजा और सुन्दरी।

धनपाल के नल नामक जो पुत्र थे वे योगी और दिगंबर होकर वन को चले गये और सात पुत्रों ने 'सात द्वीपों' का अधिकार पाया और 'पृथ्वी' में इनका वंश फैल गया। जम्बू द्वीप में विश्व नामक राजा हुआ। उसके वंश में सुदर्शन नामक राजा हुआ जिसके दो स्त्रियाँ थी। सुदर्शन का पुत्र धुरंधर हुआ। उसका परपोता समाधि और समाधि के वंश में सुप्रसिद्ध मोहन दास हुआ जिसने कावेरी के तट पर श्रीरंगनाथजी के अनेक मन्दिर बनवाये। मोहन दास का परपोता नेमिनाथ हुआ जिसने नैपाल बसाया। नेमिनाथ का पुत्र वृन्द हुआ जिसने श्रीवृन्दावन में यज्ञ करके वृन्दा देवी की मूर्त्ति स्थापित की। इसके वंश में गुर्जर बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसने गुजरात बसाया। इसके वंश में हीर नामक राजा हुआ था जिसके रंग आदि सौ पुत्र थे। रंग ने राज्य किया और शेष पुत्र अपने बुरे कर्मों से शूद्र से हो गये। भारतेन्दुजी लिखते हैं, "तप के बल से फिर इन लोगों ने वंश चलाये जिनके वंश के लोग वैश्य हुए पर उनके कर्म शूद्रों के से थे।" रंग का पुत्र विशोक, विशोक का पुत्र मधु और मधु का पुत्र महीधर हुआ। महीधर महादेवजी का भक्त था और उसने महादेव को प्रसन्न करके अनेक वर पाये। इसी वंश में वल्लभ नाम का राजा हुआ और उसके घर में बड़ा प्रतापी अग्रराजा उत्पन हुआ। इसको अग्रनाथ और अग्रसेन भी कहते थे।

भारतेन्दुजी के सिवाय और किसी लेखक ने एक प्रकार से वंशावली दी ही नहीं है। "मुख्तसर हालात अग्रसेन" के लेखक

ने पूर्वज परम्परा में ये नाम गिनाये हैं—"रामचन्द्रजी की संतान का वर्णन—कुश, धुन्धमार, पौदालक, धर्मांप, ऐसत, मुग्ध, षुण्डरीक, देवायंग, कुशल, वर्णवाह, अग्निवरण" इतना लिखकर फिर लिखा है—"अम्बरीस की सन्तान में जो परीक्षित का लघु भ्राता था निम्नलिखित प्रसिद्ध राजा हुए—धूमार्क, यमरक्षक, सदारक्षक, सुलभरक्षक, जीवनरक्षक, अनन्तरक्षक, सुमंगलरक्षक, कोषरक्षक, कर्मरक्ष, मणिरक्ष, सहस्ररक्ष, ब्रह्मरक्ष, प्रकाश, ताश, मयंकर, सोहान, चलङ्गद, निम्भ, परमसेन, धर्मसेन, अमरसेन, महिमन्त सत्यमन, मधुमान, कषमंड, मयूर, भ्रमर, रहमत, श्याम, सोभाग, चूहामन, पूर्णकन्द, विहीलोक, गजराज, हरिद्र, दधिराज, रणगाधी, महीधर, अग्रसेन। लेखक ने रामचन्द्रजी से लेकर अग्रसेन तक खण्ड विखण्डित वंश परम्परा दिखलाई है। पर यह परम्परा उसने कहाँ से पाई है इसका कोई प्रमाण नहीं दिया है। इसलिये इस वंश परम्परा का देना न देना बराबर है। भारतेन्दुजी की वंशावली के नामों में से एक ही नाम इसमें आया है और वह नाम महीधर है। इस लेखक ने पूर्व पुरुषों के चरित्र की भी कोई बात नहीं लिखी है। इस प्रकार भारतेन्दुजी की दी हुई वंशावली प्रामाणिक माननी चाहिये। धनपाल से अग्रसेन तक कितनी पीढ़ियां हुई यह इस वंशावली से मालूम नहीं हो सकता, क्योंकि वंशावली अधूरी और बीच-बीच में खण्डित है। तथापि धनपाल से कम से कम तीस चालीस पीढ़ियों के बाद महाराज अग्रसेन हुए हैं। वंशावली खण्डित होने का कारण यह मालूम

होता है कि इतिहास आजकल के ढंग से लिखने की प्रथा न होने के कारण वंश परम्परा से केवल उन्हीं राजाओं के नाम लोगों को याद रहे जिन्होंने अपने जीवन काल में विशेष पराक्रम किया और बाकी नाम लोग भूल गये। अथवा यदि कोई वंशावली पहले बनी भी हो और वंशावली राजदरबार में रखने की प्रथा पहले से है ही, तो वह वंशावली अब नहीं मिलती है। सम्भव है कि अनुसन्धान करने से पूरी वंशावली मिल जाये।

अभी जो वंशावली अपने सामने है वह खण्डित है और उससे यह साबित होता है कि महाराज धनपाल के वंश में अग्रसेन के अतिरिक्त १८ राजा और ऐसे हुए जिन्होंने अपने समय में कुछ विशेष पराक्रम कर अपना नाम अमर कर रखा है, क्योंकि यदि इन्होंने कोई बड़ा पराक्रम न किया होता तो इनके नाम भी औरों की तरह लुप्त हो जाते। इन १८ राजाओं के पराक्रम का वृत्तान्त मिलना दुःसाध्य क्या असाध्य ही मालूम होता है। इनमें मोहनदास, नेमिनाथ, वृन्द और गुर्जर के नाम विशेष प्रसिद्ध हैं।

मोहनदास बड़े भक्त पुरुष थे। श्री रंगनाथजी के चरणों में इनकी बड़ी प्रीति थी। इन्होंने कावेरी नदी के तट पर श्री रंगनाथजी के अनेक मन्दिर बनवाये हैं। इन मन्दिरों का अनुसन्धान करने से सम्भव है कि मोहनदास के सम्बन्ध में कोई शिलालेख मिल जाये। इन्हीं के परपोते नेमिनाथ हैं जिनकी यह कीर्ति है कि उन्होंने नेपाल बसाया। यदि नेपाल बसानेवाले

"नेमिनाथ" यही हैं तो इनके विषय में यह बात भी मालूम हो जाती है कि यह मुनि थे क्योंकि नेपाल के इतिहास में नेपाल बसाने वाले का नाम "नेमुनि" है, जो एक मुनि ही थे। नेपाल के इतिहास में इस बात का उल्लेख नहीं है कि नेमुनि कहां से आये थे, पर अग्रवाल जाति के पुरुषों के इतिहास से यह बात मालूम हो जाती है। सम्भव है कि नेमिनाथ विरक्त होकर तपस्या करने नेपाल के तपोवन में पहुंच गये हों। इन्हीं नेमिनाथ के पुत्र वृन्द का नाम भी परम्परा से चला आता है। इन्होंने वृन्दावन में यज्ञ किया था और वृन्दा देवी का मन्दिर बनवाया था। वृन्द के बाद इस वंश में विशेष प्रसिद्ध पुरुष गुर्जर नामक राजा हुआ। इसी के नाम से गुजरात बसा कहा जाता है। सम्भव है कि गुजरात के इतिहास से इसका अधिक पता चले।

इस प्रकार अग्रसेन के पुरुखों में धनपाल, मोहनदास, नेमिनाथ, गुर्जर आदि बड़े भक्त और पराक्रमी पुरुष हुए हैं। राजा महीधर का नाम भी प्रसिद्ध है और कहते हैं कि ये भगवान शंकर के उपासक थे। किसी किसी ने लिखा है कि महाराज अग्रसेन इन्हीं के बेटे थे। मुरादाबाद वासी बांकेलालजी लिखते हैं कि महाराज अग्रसेन महीधर के पुत्र थे। इनकी माता का नाम "भेदकुंआर" था। यह मन्दलोर (महोबा) के राजा की कन्या थी। पर कोई कहते हैं कि नहीं इनके वंश में वल्लभ राजा हुए और उनके वंश में आगे चलकर अग्रसेन हुए हैं, जिनका वृत्तान्त चतुर्थ अध्याय में दिया जायेगा।

[४]

महाराज अग्रसेन

धनपाल, मोहनदास, नेमिनाथ, वृन्द, गुर्जर, महीधर आदि मनस्वी और पुण्य पराक्रमी राजाओं की परम्परा से बुनीत क्षत्री कुल में महाराज अग्रसेन का जन्म हुआ।

देश काल

महाराज अग्रसेन का जन्म काल चाहे द्वापर के शेष में हो या कलि के प्रथम चरण के आरम्भ में हो अथवा और कोई समय हो इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि वह समय बहुत अच्छा था। हिन्दू जाति का ही राज्य था। देश में धन था, धर्म था, विद्या का प्रचार था और चारों वर्ण अपने-अपने कर्म से रहते थे। गुण कर्म की ही इज्जत थी। सच्चे की ही कदर थी और सब लोग सुखी और सन्तुष्ट थे। ब्राह्मण त्यागी थे, क्षत्रिय रक्षक थे, वैश्य सच्चे थे और शूद्र विनयी थे। ऋषि मुनि विद्यमान थे और उन्हीं की आज्ञा से राजा राज्य करते थे। सब वर्णों में परस्पर प्रेम था और धर्म ही लक्ष्य था। धर्म के निमित्त ही सब कर्म किये जाते थे और अत्याचार, दुराचार या व्यभिचार कोई नहीं जानता था। वीरता में, विद्या में, बुद्धि में और बल में भारतवर्ष का उस समय संसार में कोई सानी नहीं था। देश देशान्तर के लोग आकर भारत के विश्व विद्यालयों में पढ़ते थे और भारत की कीर्ति दिग्दिगन्त में फैली हुई थी।

पुरुषों में बहु विवाह प्रचलित हो गया था, पर स्त्रियों का सती धर्म प्रकाशमान था। पुरुषों के साथ उनकी सहधर्मिणी स्त्रियां सती होती थी। जिस देश में स्त्रियां पुरुषों के साथ सती हो सकती हैं, वहाँ व्यभिचार रूपी उल्लू उसके प्रकाश के सामने कैसे ठहर सकता है। पुरुषों में भी धर्म का भाव था, विद्या थी और बल था। भारत के तेजस्वी नेत्रों से कोई देश अपने नेत्र नहीं मिला सकता था। पर जंगसाही नहीं थी, धर्मराज्य था।

जन्मोत्सव

बाल्यकाल और शिक्षा

ऐसे समय में महाराज अग्रसेन का जन्म हुआ। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सारे राज्य में आनन्द छा गया और सब प्रजाओं ने अपने घर लीपपोत कर साफ कराये, वन्दनवार बांधे, ध्वजा फहराई, बाजन बजने लगे, घर-घर आनन्द मनाया जाने लगा। नगर के हाकिमो को किसी पर जबरदस्ती नहीं करनी पड़ी। सबको स्वयं ही ऐसा आनन्द हुआ कि वह नाना प्रकार से प्रकट होने लगा। घर-घर पुत्रोत्सव मनाया जाने लगा। मिठाइयाँ बांटी गई। नगर-निवासिनी स्त्रियों ने मंगल गीत गाये और सब प्रजा ने राजप्रसाद में जाकर महाराज को बधाई दी। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिया कि राजपुत्र चक्रवर्ती राजा हो, चिरायु हो और धर्मराज्य करके प्रजा का मंगल करे। इस प्रकार कई दिन राजधानी तथा समस्त राज्य में आनन्द

हुआ, बारहवें दिन नामकरण संस्कार हुआ। पुत्र का नाम अग्र रक्खा गया। इसी खुशी में यमुना नदी के तट पर एक नया नगर बसाया गया और उसका नाम अग्रपुर रक्खा गया जो अब आगरा हो गया है। अग्रसेन का लालन-पालन होने लगा। अग्रसेन जब कुछ बड़े हो गये तो प्राचीन शिक्षा प्रणाली के अनुसार उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। अग्रसेन ने वेद शास्त्र का सम्पूर्ण अध्ययन किया और शस्त्र विद्या में निपुण हुए।

इस प्रकार शास्त्रों में पारंगत और शस्त्र संचालन में कुशल होकर अग्रसेन नाना प्रकार से प्रजा का रंजन करने लगे। युवराज और प्रजा में प्रेम बढ़ने लगा और अग्रसेन जब सब प्रकार से राज्य का शासन करने के योग्य हो गये तब उनके पिता ने बहुत प्रसन्न होकर संन्यास ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। उस समय वर्णाश्रम धर्म का पालन होता था। इसलिये महाराज की इस इच्छा का किसी ने विरोध नहीं किया। अग्रसेनजी सब प्रकार से योग्य हो गये थे। तब अच्छी साइत देखकर महाराज ने अग्रसेन को राजतिलक कराया और आप सब झंझटों से छूटकर तपस्या करने तपोवन में चले गये। महाराज अग्रसेन उस समय ३५ वर्ष के थे।❀

महाराज अग्रसेन ने राजपाट पाकर क्षात्र धर्म के अनुसार कई बार विजय यात्रा की और राज्य का विस्तार किया। इनके अधीन चम्पावती आदि अनेक माण्डलीक राज्य थे। ४० वें वर्ष

❀ मुख्तसर हालात महाराज अग्रसेन

के लगभग इन्होंने अपनी पुरानी राजधानी प्रतापनगर का प्रबन्ध अपने छोटे भाई को सौंप दिया और आगरे में नई राजधानी कायम की। इस प्रकार इनका प्रताप दिन दूना और रात चौगुणा बढ़ रहा था, जिसे देखकर प्रजा बहुत प्रसन्न होती थी।[1]

परन्तु अग्रसेन अभी ब्रह्मचारी ही थे। इन्होंने विवाह नहीं किया था। सबकी इच्छा थी कि महाराज विवाह करें। विवाह के सम्बन्ध में अनेक बातें हैं। उनमें कौन सच है और कौन झूठ इसका निर्णय करने के लिये अभी साधन नहीं है। एक कथा यह है कि एक दिन दरबार में प्रधान मन्त्री रंजराज ने विवाह की बात छेड़ी और कहा कि आपने ४० वर्ष ब्रह्मचर्य पालन किया है। पूर्ण ब्रह्मचर्य हो चुका है और अब आपको विवाह करना चाहिये। महाराज ने भी कहा कि ठीक है। वंश विस्तार के लिये विवाह करना धर्म है। यह सुनकर सबको हर्ष हुआ। राजाओं के विवाह में क्या देर लगती है। एक छोड़ दो-दो राजकन्याएँ माला लेकर तैयार हो गईं। एक कन्या चम्पावती के राजा धनपाल की थी जिसका नाम धनपाला था और दूसरी परम शहर के राजा सुन्दर सिंह की कन्या सुन्दरावती। महाराज ने इन दोनों कन्याओं से विवाह कर लिया।[2]

---

१ मुख्तसर हालात महाराज अग्रसेन।

२ " " "

महाराज अग्रसेन के विवाह के सम्बन्ध में भारतेन्दुजी ने जो पौराणिक कथा अपनी पुस्तक में लिखी है वह इससे भिन्न है। उसका तात्पर्य यह है कि एक समय नागलोक से नागों का कुमुद नाम राजा अपनी माधवी कन्या को लेकर भूलोक में आया। उस पर इन्द्र मोहित हुआ और उसने नागराज से वह कन्या मांगी, पर नागराज ने उसका विवाह अग्रसेन से कर दिया। यही माधवी कन्या सब अगरवालों की जननी है और इसी नाते अग्रवाल लोग सर्पों को मामा कहते हैं। पर इस रहस्यमयी कथा का अर्थ कुछ समझ में नहीं आता। तथापि इस कथा को कोई झूठ भी नहीं कह सकता। इसमें कोई ऐतिहासिक रहस्य है और उसकी गवाही अग्रवालों की वर्तमान प्रचलित प्रथा दे रही है। कई जिलों में अग्रवाल गृहस्थ के द्वार पर साँप का चित्र बना रहता है। विवाह में साँप के फन के आकार की चुण्डी बांधी जाती है। इन बातों से यह मालूम होता है कि इसमें कोई गूढ़ ऐतिहासिक रहस्य है। आगे की कथा यह है कि इस घटना से इन्द्र और अग्रसेन के बीच शत्रुता हो गई। इन्द्र ने इनकी राजधानी पर जल नहीं बरसाया और बड़ा युद्ध किया। तब ब्रह्मा ने बीच में पड़कर दोनों को युद्ध से रोका। यह एक विवाह की बात हुई। दूसरे विवाह की कथा भारतेन्दुजी ने यह लिखी है कि इन्द्र को वश में करने के लिये अग्रसेन ने हरद्वार में जाकर महालक्ष्मी की उपासना की। महालक्ष्मी प्रसन्न हुई और उन्होंने उनकी कामना पूरी की। साथ ही यह भी बतलाया कि इस

समय तुम कोल्हापुर में जावो। वहाँ नागराज के अवतार राजा महीधर की कन्याओं का स्वयंवर है। वहाँ उन कन्याओं से विवाह करके अपना वंश चलाओ। देवी की आज्ञा पाकर अग्रसेन कोल्हापुर गये और उन कन्याओं को स्वयंवर में जीत कर अपने राज्य में ले आये। इसके अतिरिक्त मधुशालिनी नाम की एक अप्सरा भी आपके रनिवास में थी। इन्द्र ने मेल करने के लिये यह अप्सरा अग्रसेन को दी थी। इस तरह सब मिलाकर राजा की १७ रानियां और एक उपरानी थी।

राज्य विस्तार

इतनी बात निविर्वाद है कि महाराज अग्रसेन ने अनेक विवाह किये थे। विवाह के पश्चात् अग्रसेन राज्य के विस्तार और प्रबन्ध में लगे। उनके राज्य की उत्तर सीमा हिमालय पर्वत और पंजाब की नदियाँ थीं। पूर्व और दक्षिण की सीमा श्री गंगाजी और पश्चिम की सीमा यमुना जी से लेकर मारवाड़ की दक्षिण हद और उसके आस पास की भूमि थी।

पुत्र कामेष्टि यज्ञ

इस प्रकार महाराज को गृहसुख और राज्य वैभव की कुछ कमी नहीं रही। राज की सारी प्रजा सुखी थी और महाराज अग्रसेन की सदा जय मनाती थी। परन्तु अभी तक महाराज के कोई सन्तान नहीं थी जिससे सब सुख होने पर भी वह फीका ही जान पड़ने लगा। "गृह रत्नानि बालकाः" गृहस्थ के घर की

शोभा बालक ही होते हैं। जिस घर में सब सुख हो पर शिशु सन्तान न हो तो वह वैभव खाने को दौड़ता है। उसी प्रकार जिस राजा के राज्य में आनन्द ही आनन्द हो पर युवराज न हो तो वह आनन्द दुःख ही देता है। महाराज अग्रसेन का भी यही हाल था। उनके सन्तान नहीं होती थी जिससे वे बहुत दुःखी थे। तब उन्होंने पुत्र की इच्छा से पुत्र कामेष्टि यज्ञ करने का विचार किया। पौराणिक कथा के अनुसार महाराज अग्रसेन के १७ रानियाँ थीं और एक उपरानी। इन अठारहों रानियों से सन्तान हो इसलिये महाराज ने १८ यज्ञ करने का संकल्प किया।

आजकल यज्ञादिक उपायों पर लोगों का विश्वास नहीं है, क्योंकि यज्ञ का वैसा कुछ प्रभाव देखने में नहीं आता। पर प्राचीन समय में लोग मानवी उपायों से दैवी उपायों पर ही अधिक विश्वास करते थे, क्योंकि देवताराधन ही उनका परम व्यवसाय था और उन्हें सर्वत्र ईश्वर की दिव्य मूर्ति दिखायी देती थी। मेघों की गड़गड़ाहाट में, बिजली की कड़कड़ाहट में, दामिनी की दमक में, धरती के कंप में, सूर्य के उदयास्त में, जल में, थल में, नभ में सर्वत्र सब पदार्थों में परमेश्वर के दर्शन होते थे। प्रत्येक जड़ पदार्थ के अन्दर वे ईश्वर का अस्तित्व मानते थे और जैसे प्रत्येक मनुष्य शरीर के अन्दर परमात्मा के ही अंश रूप जीवात्मा का वास है वैसे ही प्रत्येक जड़ पदार्थ में वे चैतन्य शक्ति का अनुभव करते थे। उस चैतन्य शक्ति का अधिष्ठान कोई न कोई ज्ञानमय, ज्ञानरूप ईश्वर विभूति है

ऐसा उनका विश्वास था इसलिये पंच महाभूतों और सृष्टि के सब दृष्यादृष्य पदार्थों में वे उनके अधिष्ठाता देवताओं की कल्पना करके उनकी आराधना करते थे और उन्हें यह विश्वास था कि जिस पदार्थ के जो अधिष्ठाता देवता हैं उनके देवताओं को प्रसन्न करने से वे पदार्थ मिल जाते हैं। देवताओं के दिये हुए इन पदार्थों को देवताओं की सेवा में अर्पण करके फिर उनसे इष्ट फल मांगने की विधि को ही यज्ञ कहते हैं। भगवान ने गीता में कहा है "देवान् भावयतानेन" (इस यज्ञ के द्वारा देवताओं को प्रसन्न करो)। पहले यज्ञ पर ही लोगों का सारा भरोसा था। गीता में भगवान ने कहा भी है कि :—

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्म समुद्भवः ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम्।
तस्मात् सर्व गतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठतम्॥

यज्ञ की ऐसी महिमा थी। किसी को कभी सन्देह नहीं होता था कि यह यज्ञ क्या बला है। कारण उनकी मानसिक सामर्थ्य बड़ी थी—बड़ा मंत्र बल था ; मन को जीतने वाले लोग होते थे ; वे मनको जानते थे और जानकर उस मनोबल से—मंत्रबल से वे अपने सब काम सिद्ध करते थे। अस्तु।

महाराज अग्रसेन ने सन्तान के लिये १८ यज्ञ करने का संकल्प किया। परन्तु यज्ञ ब्रह्म कर्म है—सृष्टि कार्य है। वह इसी भाव से किया जाता है कि इस यज्ञ में हम जो दान कर रहे हैं वह हमारा नहीं है, उसी का है जिसको अब दे रहे हैं। इसीलिये

यज्ञ में आहुति देते समय प्रत्येक आहुति के साथ होता "इदं न मम" कहा करता है। अर्थात् यज्ञ से होनेवाला फल भी "न मम" ही है। यही भाव महाराज अग्रसेन का भी था, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि यज्ञ के संकल्प के साथ उन्होंने यह भी संकल्प किया कि यज्ञ से जो सन्तान होगी उस सन्तान का गोत्र भी यज्ञ के प्रधान आचार्य ऋषि के नाम से हो।

महाराज ने १७ यज्ञ यथा विधि सम्पन्न किये। ये १७ रानियों से सन्तान पाने की इच्छा से किये गये थे और वे सम्पूर्ण भी हो गये। परन्तु १८ वां यज्ञ जब होने लगा तब अक्समात् महाराज का मन फिर गया। उन्हें "यज्ञ की हिंसा से बड़ी ग्लानि हुई" और उन्होंने कहा "हमारे कुल में यद्यपि कहीं भी कोई मांस नहीं खाता परन्तु दैवी हिंसा होती है सो आज से जो मेरे वंश में हो उसको यह मेरी आन है कि दैवी हिंसा भी न करें अर्थात् पशु यज्ञ और बलिदान भी हमारे वंश में न हो।" अग्रसेन ने वह यज्ञ पूरा नहीं किया। इस बात की मीमांसा करके निर्णय करना हमारे अधिकार के बाहर है कि यज्ञ में जीव हिंसा कहां तक ठीक है।

यज्ञ के बल से महाराज अग्रसेन की प्रत्येक रानी (उपरानी सहित) से "तीन तीन पुत्र और एक एक कन्या हुई।" इस प्रकार ५४ पुत्र १८ कन्याएँ हुई। कोई कोई कहते हैं ५४ नहीं बल्कि प्रत्येक रानी से एक एक पुत्र हुआ याने कुल १८ पुत्र हुए। जो हो पूर्व संकल्प के अनुसार जिस यज्ञ से जो सन्तान हुई उस यज्ञ के

ऋषि के नाम से उस सन्तान का गोत्र माना गया। अर्थात् १८ यज्ञों से १८ गोत्र कायम किये गये जिनके शुद्ध नाम अब इस प्रकार अपभ्रंश हो गये हैं—(१) गर्ग (२) गोइल (३) गावल (४) बांसिल (५) कांसिल (६) सिंगल (७) मंगल (८) बिन्दिल (९) तिंगल (१०) ऐरण (११) टेरण (१२) ढिंगल (१३) तित्तल (१४) मित्तल (१५) तुन्दल (१६) तायल (१७) गोभिल और (१८) गौण। गौण शब्द का अर्थ अप्रधान अर्थात् मुख्य नहीं, ऐसा है और यह गोत्र आधा माना भी जाता है। किस कारण से यह गोत्र आधा माना जाता है इसका निर्णय करना बड़ी जिम्मेदारी का काम है। यज्ञ आधा हुआ इसलिये आधा गोत्र हुआ अथवा और कोई कारण है इसका विचार गोत्र समस्या के अध्याय में करेंगे।

चरित्र की कुछ बातें

अग्रसेन राज्य गद्दी पर बैठे तब प्रजा सब प्रकार से सुखी थी, वह ऊपर देख ही चुके हैं। अग्रसेन की प्रथम राजधानी प्रतापनगर थी और वहां अन्न, धन, रत्न और गोधन आदि किसी बात की कमी नहीं थी। स्वयं इन्द्र राजा के मित्र थे, समय पर वर्षा होती थी और दुर्भिक्ष का कहीं नाम भी नहीं सुनाई देता था। पर कुमुद राजा की कन्या माधवी से विवाह होने के पश्चात् कुछ काल अग्रसेन के राज्य में दुर्भिक्ष का भयंकर प्रकोप हुआ था। तब महाराज अग्रसेन बहुत घबराये और दुर्भिक्ष निवारण के निमित्त स्वयं स्थान स्थानान्तर में प्रयटन किया, तीर्थ यात्रा की और महालक्ष्मी की भक्ति से उन्हें प्रसन्न किया जिससे दुर्भिक्ष

का निवारण हुआ। पर राजा अभी अपने राज्य में नहीं गये। प्रधान रानी ही सब प्रबन्ध करती थी। इस दुर्भिक्ष से राजा को बड़ा क्लेश हुआ था और उन्होंने इन्द्र को वश में करने के लिये काशी में आकर कपिलधारा तीर्थ में महादेवजी की उपासना की। महादेवजी प्रसन्न हुए और उन्होंने अनेक वर देकर यह बतलाया कि तुम महालक्ष्मी की उपासना करो। अग्रसेन एक प्रेत की सहायता से हरद्वार गये और वहां की तपोभूमि में बैठकर देवी की आराधना की। देवी ने प्रसन्न होकर वर दिया कि "इन्द्र तेरे वश में होगा।" इसके बाद अग्रसेन कोल्हापुर में गये, स्वयंवर में कन्याओं को जीता, फिर राज्य में लौट आये इत्यादि कथा ऊपर आ ही गई है। महालक्ष्मी के प्रसाद से सब कामना पूर्ण हुई देख अग्रसेन ने अपनी राजधानी में महालक्ष्मी का एक बड़ा मन्दिर बनवाया था।

इस प्रकार राज्य और वंश का विस्तार करके महाराज अग्रसेन ने अनेक वर्ष धर्मराज्य किया। "यथा राजा तथा प्रजा" यह कहावत प्रसिद्ध ही है। जैसे राजा होते हैं वैसी ही प्रजा बनती है। राजा यदि धर्म को मानता है तो प्रजा में भी धर्म बढ़ता है। राजा यदि प्रजा को अपने पुत्र के समान समझता है तो प्रजा भी उसे पिता के तुल्य मानती है। परन्तु यदि राजा प्रजा को ठगता है, अपने धर्म का पालन नहीं करता, राज्य को अपने विषय सुख का साधन समझता है, प्रजा को भूखों मार आप बड़ा बनता है और अत्याचार करता है तो उस राजा की

प्रजा भी राजा से शत्रुता करती है और उसे गद्दी से उतार देती है। राजा देवता है तो प्रजा भी देवता है। राजा यदि राक्षस है तो प्रजा भी ब्रह्मराक्षस बन जाती है। महाराज अग्रसेन स्वयं धर्मात्मा थे, उनकी प्रजा भी धर्मात्मा थी। सब द्विज वेदों का अध्ययन करते और त्रिकाल साधते थे। प्रजातन्त्र राज्य, जैसा इस समय समझा जाता है वैसा तो नहीं था पर राजतन्त्र भी नहीं था। रिपब्लिक भी नहीं था। तो क्या था ? धर्मराज्य था। धर्मशास्त्र ही राजा था, ऋषि उसके मन्त्री थे, महाराज अग्रसेन उनकी आज्ञा पालन करने वाले सेवक थे और प्रजा राज्य की परीक्षा करने वाली संस्था थी। राजा प्रजा में मतभेद होने पर धर्मशास्त्र के न्यायालय से जो आज्ञा होती थी उसीका पालन राजा और प्रजा को करना पड़ता था। महाराज अग्रसेन ने अनेक वर्ष इस प्रकार धर्म राज्य किया और जब उन्होंने देखा कि अब ये लड़के लोग राज्य सम्भाल लेंगे तब उस वृद्धावस्था में अपना राज्य लड़कों के हवाले करके आप तपस्या करने उत्तराखण्ड की ओर चले गये। कैसा दिव्य जीवन था !

[५]

महाराज अग्रसेन के पुत्र

भविष्योत्तर पुराण के आधार पर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने लिखा है कि महाराज अग्रसेन के १८ रानियों से ५४ पुत्र और १८ कन्याएँ हुई। राजवंशी लेखकों का यह कहना है कि

महाराज के १८ रानियां थीं और उनसे १८ ही पुत्र हुए। बहालसिंह और बांकेलाल ने उनके नाम इस प्रकार दिये हैं :— (१) पुष्पदेव (२) गेन्द्रमल (३) कर्णचन्द्र (४) मणीपाल (५) बलन्द (६) धावदेव (७) वीरभान (८) वासुदेव (९) जीतजनक (१०) मन्त्रपति (११) अमृतसेन (१२) इन्द्रमल (१३) ताराचन्द (१४) सिन्धुपत (१५) तंबोल (१६) नारसिंह (१७) माधवसेन और (१८) गौधर। परंतु एक तीसरे लेखक जो राजवंशी ही हैं अग्रसेन के पुत्रों की एक दूसरी ही नामावली पेश करते हैं जो उक्त नामावली से बिलकुल भिन्न है। अनूपसिंह राजवंशी ने १७ पुत्रों के ही नाम दिये हैं और वे इस प्रकार हैं :—(१) नेमभडर (२) शुचिमान (३) भोजमान (४) कोलदेव (५) बसुहान (६) वासकी (७) देवभाग (८) शुचिसर्वा (९) धर्मनाभ (१०) कंपनाभ (११) केशवदेव (१२) बालकृष्ण (१३) रमानाथ (१४) रणवीर (१५) रणकीर्ति (१६) कशा (१७) ..... । इस तरह इन राजवंशी इतिहास लेखकों के बीच बड़ा ही अन्तर है। सम्भव है, दोनों ही गलती पर हों और पुत्रों की संख्या १८ से तिगुनी ही हो जैसा कि भविष्योत्तर पुराण में लिखा है। परन्तु इन ७२ पुत्र पुत्रियों के नाम कहीं नहीं मिलते। केवल १८ नाम ही उक्त राजवंशी लेखकों ने दिये हैं, जिनमें परस्पर मतैक्य भी नहीं है। इसलिये १८ नामों की दोनों फेहरिस्तें जोड़ दें तो यह भी प्रमाणाभाव से ठीक न होगा। अब इन दोनों फेहरिस्तों में से एक को ही चुनकर काम चलाना होगा। अनूपसिंह राजवंशी

की फेहरिस्त में केवल नाम ही हैं। उनके चरित्र की किसी बात का उल्लेख नहीं है और बांकेलाल तथा बहालसिंह की नामावली के साथ चरित्र की घटनाओं का भी उल्लेख है। यद्यपि ये सब घटनाएँ इतिहास की कसौटी पर कसी हुई नहीं हैं तथापि उसमें ही इतिहास ढूंढ़ निकालने का मौका तो मिलता है। इसलिये इसी नामावली को लेकर हम आगे चलते हैं।

राजवंशी बांकेलाल लिखते हैं कि महाराज अग्रसेन ने पतंजलि मुनि से परामर्श करके अपने इन पुत्रों को ऋषिकुल में पढ़ने के लिये भेज दिया। ऋषिकुल उस समय १८ थे। राजपुत्रों में सबसे बड़ा पुष्पदेव था और वह युवराज कहलाता था। पुष्पदेव समेत सब राजपुत्रों ने भिन्न-भिन्न ऋषिकुलों में वेद-वेदांग और धनुर्वेद की शिक्षा पायी और विद्वान होकर जब राजपुत्र ऋषियों के साथ राजधानी में लौट आये तो उनके स्वागत के लिये बड़ा समारम्भ हुआ और राजसभा में उनकी परीक्षा हुई। राजसभा में उस समय पण्डितों और वाग्मीवरों का क्या अभाव था। एक से एक विद्वान, कवि, कल्पक और निष्णात लोग थे। राजपुत्रों से उन्होंने अनेक प्रश्न किये। राजपुत्रों ने इन प्रश्नों के जो उत्तर दिये उनसे राजा और राजसभा को बहुत हर्ष हुआ। महाराज ने ऋषियों के चरण छुए, बार-बार उन्हें धन्यवाद दिया और उनका उस काल की पद्धति के अनुसार उचित सत्कार करके उन्हें विदा किया।

राजपुत्र ऋषिकुलों में अध्ययन करके वेद स्मृति आदि तथा

उस काल के उपयोगी ज्ञान को प्राप्त करके विद्वान और व्यवहार चतुर तो हो चुके थे, अब राजधानी में आकर उन्होंने राजकाज का अनुभव प्राप्त करना भी आरम्भ किया। ऋषिकुलों के पवित्र और शुद्ध स्थान में रहने के कारण उनके शरीर बलिष्ट और तेजस्वी हुए थे। नेत्रों में ज्योति थी, बाहु में बल था, मन पर धर्म का संस्कार था और रोम-रोम से ब्रह्मचर्य का तेज टपक रहा था। महाराज अग्रसेन ने इस तरह जब सोचा कि स ब पुत्र विवाह के योग्य हो गये हैं तब उन्होंने उनका विवाह करा दिया। अवश्य ही जिन पुत्रों की वयस थोड़ी कम होगी, जिनका ब्रह्मचर्यकाल और विद्याध्ययन पूरा न हुआ होगा उनका विवाह उन्होंने न कराया होगा। परंतु उनके पुत्रों की वयस में कितना अन्तर था और सभी एक साथ विवाह के योग्य हो गये थे या उनमें वयस के विचार से कुछ छोटे और बड़े भी थे यह जानने का कोई उपाय नहीं है। तथापि प्राचीन पद्धति ऐसी ही थी कि बिना ब्रह्मचर्यकाल और अध्ययन पूरा किये किसी का विवाह नहीं होता था और महाराज अग्रसेन के समय भी यही बात थी।

दूसरी बात यह भी सम्भव है कि महाराज के १८ रानियों के प्रथम गर्भ से जो १८ पुत्र हुए वे सब समवयस्क हों। राजवंशी लेखकों को इन्हीं की नामावली मिली हो और द्वितीय तृतीय गर्भ से उत्पन्न सन्तानों की नामावली न मिली हो—यह भी हो सकता है।

प्राचीन समय में और अब भी कहीं कहीं यह देखने में आता

है कि राजाओं और राजकुमारों के विवाह एक से अधिक होते थे। महाराज अग्रसेन ने स्वयं अनेक विवाह किये थे। परन्तु यह प्रथा अच्छी नहीं है। अस्तु इस प्रथा के अनुसार महाराज ने अपने पुत्रों के भी दो-दो विवाह करा दिये थे। जब इन १८ पुत्रों का पहला विवाह हो चुका तब इसके कुछ काल बाद अहि नगर के राजा बासक* अग्रसेन की राजधानी में आये। इनके १८ कन्याएँ थीं और इनकी यह प्रतिज्ञा थी कि जिस राजा के १८ पुत्र होंगे उन्हीं के यहाँ अर्थात् सब कन्याओं को एक ही जगह व्याह दूंगा। राजा बासक ने अपनी यह इच्छा महाराज अग्रसेन पर प्रकट की और महाराज ने उनका यह प्रस्ताव मंजूर कर लिया। इस प्रकार उन १८ पुत्रों का एक-एक विवाह और हो गया। उन १८ दम्पतियों के नाम इस प्रकार हैं :—

(१) युवराज पुष्पदेव—संगदीप के राजा की कन्या पोपनन्दा और नाग कन्या पद्मावती

(२) गेन्द्रमल —रोतागढ के राजा चन्द्र की कन्या चन्द्रावती और नाग कन्या तम्बोल देवी

(३) कर्णचन्द्र —नन्दराज की कन्या सिन्धुवती और नाग कन्या शवन्ती

(४) मणीपाल —दर्यावखण्ड के राजा वाहाक की कन्या मन्दावती और नाग कन्या विष्णुदेवी

* राजा वासक अहि नगर के राजा थे, इसलिये नागराज कहलाते थे और इसीलिये उनकी कन्याएँ नाग कन्याएँ कहलायीं।

(५) कानचन्द —मणीकन्द के राजा मनोध्वज की कन्या आज्ञावती और नाग कन्या पाली

(६) धावदेव —वर्धे की कन्या उरस्ता और नाग कन्या रमादेवी

(७) वीभान —पूर्ण वंश के राजा विजयचन्द्र की कन्या चन्दादेवी और नागकन्या सुमन्ती

(८) वासुदेव —भ्रांतपुर के राजा जयन्त की पुत्री फूलदेवी और नागकन्या गोमती

(९) जीत जनक—रंगपुर के राजा समाध्वज की पुत्री सामावती और नाग कन्या हीरा देवी

(१०) मन्त्रपति —अमरावती की राजकन्या अमरा देवी और नाग कन्या गोमती

(११) अमृतसेन —विदतपुर के राजा इन्दुसेन की पुत्री माधवती और नागकन्या अमरावती

(१२) इन्द्रमल —भीमपुर के राजा लोकनन्द की पुत्री लोकनन्दा और नागकन्या केशव देवी

(१३) ताराचन्द —सरोवर गढ़ के राजा माधवसेन की पुत्री तोरण देवी और नागकन्या लजवन्ती

(१४) सिन्धुपत —लाल नगर के राजा जावालसेन की कन्या बासन्ती और नागकन्या ईला देवी

(१५) तंबोल —तारा शहर के राजा सिन्धु की कन्या गोमती और नागकन्या रमावती

(१६) नृसिंह —सिंधुपुर के राजा मणी की पुत्री शैलवती और नागकन्या आशावती

(१७) माधव सेन —तानपुर के राजा वीरभान की पुत्री मोहनी और नागकन्या नवरंग देवी

(१८) गौधर —बलहक के राजा सुदर्शन की पुत्री तारावती और नागकन्या मधवन्ती

अनूप सिंह राजवंशी ने लिखा है कि पहला विवाह नाग-कन्याओं के साथ ही हुआ था। पर रात के समय ये नाग-कन्याएँ सर्पिणी हो जाती थीं। इससे उन्होंने अपने पुत्रों का दूसरा विवाह अपने मांडलिक राजाओं की कन्याओं के साथ करा दिया। परन्तु इन्होंने अग्रसेन के पुत्रों की जो नामावली दी है वह भी हमने इस परिच्छेद में स्वीकार नहीं की है। इसलिये इस विषय का भी उल्लेख मात्र करके छोड़ देते हैं। इसमें नाग-कन्याओं के सर्पिणी होने का जो विषय लिखा है उसका विचार रहस्य वाले प्रकरण में करेंगे।

यहां तक राजवंशी लेखकों की दी हुई वंशावली के आधार पर ही वर्णन किया गया है। नागवंशी लेखकों ने ५४ पुत्र और १८ कन्याएँ मानी हैं और इसका आधार भविष्योत्तर पुराण है। परन्तु इन ७२ पुत्र पुत्रियों के नाम किसी ने नहीं दिये हैं। ये नाम क्या हो गये? कहीं मिल सकते हैं या नहीं? इसके अनुसन्धान की आवश्यकता है।

महाराज अग्रसेन के पुत्रों के सम्बन्ध में भारतेन्दुजी ने केवल

इतना ही लिखा है कि ७२ पुत्र पुत्रियाँ थीं और अग्रसेन के बाद उनका पुत्र विभु राजगद्दी पर बैठा। राजवंशी लेखकों ने जो नाम दिये हैं उनमें विभु का नाम नहीं है इसलिये यह अनुमान होता है कि पूरे नाम राजवंशी लेखकों को भी नहीं मिले हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि राजवंशी लेखकों ने जितनी सामग्री उप-स्थित की है उससे कुछ न कुछ प्रकाश पड़ता है और यह मालूम होता है कि महाराज अग्रसेन जब सब पुत्रों को धर्म और राज-नीति तथा रण विद्या में निपुण करके तपोवन में तपस्या करने चले गये उस समय उनके पुत्र इस योग्य हो गये थे कि धर्म की आज्ञा के अनुसार राज्य का शासन करके प्रजा का रंजन करने में कोई बात उठा न रखें। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि महाराज अग्रसेन के बाद उनके पुत्रों के समय में भी प्रजा सब प्रकार से सुखी थी। राजवंशी बहाल सिंह और बांके लाल के कथना-नुसार पुष्पदेव (इसका नाम विभू भी रहा होगा) ही महाराज अग्रसेन के बाद राजगद्दी पर बैठा और इसने अग्रसेन की कीर्ति को फैलाकर अपने उत्तम शासन से प्रजा का पूर्ण प्रेम सम्पादन किया था।

[६]

वंश विस्तार

पांचवे परिच्छेद में हमने देखा है कि महाराज अग्रसेन के ५४ पुत्र और १८ पुत्रियों में से केवल १८ पुत्रों की ही नामावली

मिलती है और शेष पुत्र और पुत्रियों के नाम नहीं मिलते। यह भी हमने देखा कि इन १८ पुत्रों के दो-दो विवाह हुए थे। एक विवाह किसी मांडलिक राज कन्या के साथ और दूसरा अहि नगर या नाग लोक के राजा वासक की १८ कन्याओं में से एक-एक कन्या के साथ। अब राजवंशी लेखक यह कहते हैं कि राज-कन्याओं से जो सन्तति हुई वह राजवंशी कहलायी और नाग कन्याओं से जो हुई वह नागवंशी कहलायी। परन्तु नागवंशी लेखक यह सिद्धांत स्वीकार नहीं करते और भविष्योत्तर पुराण के आधार पर वे यह बतलाते हैं कि महाराज अग्रसेन की ही १७ रानियाँ और १ उपरानी थी और इन्हीं में नागलोक के राजा कुमुद की माधवी नाम्नी परम रूपवती कन्या थी और इस माधवी माता से जो सन्तान हुई वही नागवंशी कहलायी। इस प्रकार दो परस्पर विरोधी व्युतपत्तियाँ बतलायी जाती हैं। अवश्य ही इनमें से एक बात सच होगी और दूसरी झूठ, परन्तु इस विषय का पूरा विवरण जब तक प्राप्त नहीं होता तब तक कोई निश्चय लिपि बद्ध करना कठिन है। इसमें सन्देह नहीं कि नाग-वंश और राजवंश ये दो भेद पहले से चले आते हैं और इन दोनों वंशों के गोत्र समान हैं, यद्यपि खान-पान और व्याह-शादी में भेद हो गया है।

नागवंशी लेखकों ने इस विषय की बहुत खोज नहीं की और राजवंशी लेखकों ने महाराज अग्रसेन के पुत्रों के वंशविस्तार के सम्बन्ध में कुछ तो हस्तलिखित ग्रन्थों के आधार पर और कुछ

अपनी कल्पना से जो बातें संग्रह की हैं वे ही इस समय "अभावे शालि चूर्णमवा" काम दे सकती हैं। अस्तु।

महाराज अग्रसेन के पश्चात् उनके बड़े बेटे पुष्प देव राज-गद्दी पर बैठे यह हम अगले परिच्छेद में देख आये हैं। राजवंशी लेखक बहाल सिंह और बांकेलाल कहते हैं कि पुष्प देव के अनेक पुत्र पुत्रियाँ थीं जिनमें सबसे बड़े बेटे का नाम अनन्तामन था। पुष्प देव के पश्चात् इन्हीं को राजगद्दी मिली। इनके पोते रण-वीर जीत के नाम से विख्यात हुए और मथुरा के महाप्रतापी राजा कंस के साथ उनका युद्ध हुआ बताया जाता है। इस युद्ध में रणवीर जीत की मृत्यु हुई तब अगरोहे की राजगद्दी पर रण-वीरजीत के पड़पोते चरणचन्द्र बैठे। उन्होंने १८ पुत्रों की वंश शाखाओं का वर्णन किया है।

इस वंशावली में से कुछ विशेष बातें यहाँ देते हैं—अग्रसेन के द्वितीय पुत्र गेन्द्रमल के वंश में गंधर्व कुल से महेश्वर हुए। बहालसिंह बतलाते हैं कि इन्हीं से माहेश्वरी वंश चला। तीसरे पुत्र कर्णचंद के वंश में मगध देश के राजा जरासन्ध हुए। चौथे पुत्र मणिपाल के वंश में गुप्त वंशीय सुप्रसिद्ध सम्राट चन्द्रगुप्त हुए। पांचवें पुत्र बलंद के वंश में सम्वत् कर्त्ता विक्रमादित्य और उन्हीं के वंश की एक शाखा से शक कर्ता शालिवाहन हुए। आठवें पुत्र वासुदेव के वंश में शिशुपाल राजा हुआ। नवें पुत्र जीतजनक के वंश में धर्म सेन राजा हुआ, जिसने धाराधिपति समरजीत से मिलकर अगरोहे का विध्वंस किया। इसी वंश की दो शाखाएँ

पीछे पाल और सेन नाम से विख्यात हुईं। ग्यारहवें पुत्र अमृतसेन के वंश में रुक्मशिव हुए, जो रस्तोगी बंश के मूल पुरुष है। चौदहवें पुत्र सिन्धुपत के वंश में गौतम बुद्ध देव हुए। अठारहवें पुत्र गौधर के बंश से गौठाकुर और बिशुन ठाकुरों की उत्पत्ति हुई। ये बातें इतिहास की कसौटी पर कसने पर कहाँ तक ठीक उतरेंगी यह नहीं कह सकते। परन्तु लेखक ने हर बात के साथ हस्तलिखित ग्रन्थों का प्रमाण दिया है। ये हस्तलिखित ग्रन्थ कहाँ तक ठीक हैं, यह भी जांचने का विषय है जो परिश्रम और काल से ही साध्य है। लेखक ने जिन प्रमाण ग्रन्थों के आधार पर ये बातें लिखी हैं उनके नाम प्रथम प्रकरण में आ गये हैं। बहालसिंह ने लिखा है कि दुर्योधन के राज्य काल में धर्मसेन, अग्रहायणसेन, भूमल, अर्कसेन, इन्द्रसेन, जीतसेन आदि १५० नागवंशी प्रसिद्ध पुरुष वर्तमान थे और राजवंशियों में प्रेमसेन, रुक्म आदि ७५ पुरुष प्रसिद्ध थे।

महाराज अग्रसेन की सन्तति के विषय में भविष्योत्तरपुराण आदि ग्रन्थों के आधार पर भारतेन्दुजी ने इतना ही लिखा है कि "अग्रसेन वृद्ध होकर जब तप करने चले गये तब उनका पुत्र विभु राज्य पर बैठा और उसके कई वंश तक राजा लोग अपने धर्म में निष्ठ होकर राज्य करते रहे। इस वंश में दिवाकर एक राजा हुआ जिसने वेद धर्म छोड़कर जैन मत ग्रहण किया। तब से अगरवालों से वेद धर्म छूटने लगा। परंतु अगरोहा और दिल्ली के अगरवालों ने अपना धर्म नहीं छोड़ा। इस वंश में राजा

उग्रचंद के समय से राज्य घटने लगा।" बांकेलाल ने लिखा है कि मगध देश के राजा श्रीधन के समय में अगरवाले श्रीधन के अधीन मुआफीदार ही रह गये थे। जब शहाबुद्दीन ने चढ़ाई की तब तो अगरोहे का विध्वंस ही हो गया। शहाबुद्दीन की लड़ाई में बहुत से लोग मारे गये और उनकी अनेक स्त्रियाँ सती हुईं जो हम लोगों के घर में अब तक मानी और पूजी जाती हैं। यह अगरवालों के नाश का समय था। इसी समय से बहुतों ने धर्म छोड़ दिया और यज्ञोपवीत तोड़ डाले। उस समय जो अगरवाले भागे वे मारवाड़ और पूर्व में जा बसे। उनके वंश में पुरबिये और मारवाड़ी अगरवाले हुए; उत्तराधी और दक्खिनाधी लोग भी इसी भांति हुए।

इस प्रकार भारतेन्दुजी के मतानुसार अग्रवाल वंश की चार शाखाएँ हुईं। परन्तु "उत्तराधी और दक्खिनाधी" ये शब्द अप्र सिद्ध हैं। भारतेन्दुजी ने राजवंशी का उल्लेख नहीं किया है जो एक प्रसिद्ध शाखा है। और इस तरह तीन ही शाखाएँ मुख्य मानी जाती हैं—(१) मारवाड़ी अग्रवाल जिनका वासस्थान दिल्ली से पश्चिम माना जाता है, (२) पुरबिये या देशवाली जो युक्त प्रदेश में जा बसे और (३) राजवंशी जिनका वास विशेषकर युक्त प्रदेश में ही है। इनमें मारवाड़ी अग्रवालों और देशवाली अग्रवालों में परस्पर सम्बन्ध होता है। यद्यपि दोनों का रहन-सहन और रीतिरिवाज में परस्पर बड़ा प्रभेद हो गया है जो शायद प्रान्त भेद के कारण ही हो गया है। राजवंशी अग्रवालों के साथ इन दोनों का सम्बन्ध नहीं होता। इसका कारण क्या

है यह एक ऐतिहासिक रहस्य है, जिसका उद्‌घाटन अभी तक नहीं हुआ है। उसी प्रकार मारवाड़ी और पुरबिये अग्रवाल जो नागवंशी हैं 'बिस्से' कहलाते हैं। और राजवंशी 'दस्से' कहे जाते हैं। बिस्से शब्द या तो "विष्णु" का अपभ्रंश होगा या "वैश्य" का और नागवंशी अग्रवाल विष्णु वंशी कहलाते भी हैं। पर "दस्से" शब्द की व्युत्पत्ति कुछ नहीं लगती। नागवंशियों में यह आम ख्याल है कि "दस्सा" शब्द धर्म से च्युत होने का बोधक है। इस हिसाब से दस्यु "दासी" अथवा दोष से यह "दस्सा" शब्द निकाला होगा और कुछ लोगों का यह कहना है कि महाराज अग्रसेन की उपरानी से जो सन्तति हुई वही दासी पुत्र या "दस्से" कहलाती है। परन्तु जब तक कोई ऐतिहासिक प्रमाण जो इस भेद के अन्दर छिपा हुआ है नहीं मिलता, तब तक इसका कुछ निर्णय नहीं हो सकता। गोत्र, व्यवहार, आचार-विचार आदि के हिसाब से तो जैसे नागवंशी हैं वैसे ही राजवंशी भी हैं और इनमें परस्पर सहानुभूति भी है। परन्तु इतिहासकार को अपना हृदय कठोर करके सत्यान्वेषण करना पड़ता है।

इस सम्बन्ध में राजवंशियों ने यह लिखा है कि इस भेद का कारण कुछ भी नहीं है सिवाय परस्पर ईर्षा द्वेष के। परिच्छेद के आरम्भ में ही राजवंशियों के इस मन्तव्य का उल्लेख हम कर आये हैं कि महाराज अग्रसेन के पुत्रों ने नाग कन्याओं से विवाह किया था और राजकन्याओं से भी। नागकन्याएँ भी

राजकन्याएँ ही थीं परन्तु नागकन्याओं के नाम में नागपद विशेषता दर्शक था और इन दोनों कन्याओं से अलग-अलग जो सन्तति हुई उसकी अलग-अलग पहचान के लिये नागवंश और राजवंश ये नाम पड़े। यह राजवंशी लेखकों का कहना है। फिर परस्पर इतना भेद क्यों हुआ? इसका कारण वे यह बतलाते हैं कि भारत में बौद्ध धर्म का जब प्रचार हो रहा था उस समय अगरोहे के विपुहल, मातादीन और खड्गसेन इन तीन नागवंशियों ने वैदिक धर्म छोड़कर बौद्ध मत ग्रहण किया। पीछे सभी नागवंशी बौद्ध हो गये। इससे राजवंशी नागवंशियों से बहुत असंतुष्ट हो गये। होते-होते यह असंतोष यहाँ तक बढ़ा कि शत्रुता हो गई और आपस में खान-पान, उठना-बैठना सभी व्यवहार बन्द हो गया। यही फूट दिनदिन बढ़ती गई और इसी का सम्वत् ७५८ में यह परिणाम हुआ कि अगरोहे के राजा धर्मसेन ने धारा नगरी के राजा समरजीत को अपनी राजधानी पर आक्रमण करने का निमंत्रण दिया।

इन दोनों मतों में से कौन मत ठीक है इसका निर्णय करने का काम भावी इतिहासकार पर छोड़कर हम पाठकों का ध्यान उस परिस्थिति की ओर दिलाना चाहते हैं—जो शेषोक्त मत के प्रतिपादन में प्रसंग से वर्णित हुई है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय बौद्धमत का प्रचार बढ़ रहा था। महाराज अग्रसेन का क्षत्रिय धर्म त्याग कर वैश्य धर्म ग्रहण करना एक संदिग्ध विषय है और उसमें सन्देह इस बात का है कि वे शायद जैन

धर्म के प्रभाव में आ गये थे और कवियों ने भी उन्हें वही उपदेश दिया था। जैन धर्म के आदि प्रवर्तक का काल आधुनिक इतिहासकारों ने विक्रम से ५४२ वर्ष पहले माना है। परन्तु जैनश्रुति परम्परा के अनुसार जैन धर्म इससे बहुत पहले का है और विक्रम से ५४२ वर्ष पहले जो जैनाचार्य महावीर हुए वे आदि प्रवर्तक नहीं, बल्कि जैन सम्प्रदाय के अन्तिम तीर्थङ्कर थे। संभव है कि महाराजा अग्रसेन के समय में भी किसी न किसी रूप में जैनमत का प्रचार हो। परन्तु इसके अतिरिक्त और कोई प्रमाण नहीं है जिससे वह धारणा दृढ़ हो। इसलिये यह विषय सन्दिग्ध है। परन्तु इनके बाद अग्रसेन के वंश में दिवाकर राजा ने जैन धर्म ग्रहण किया था—यह स्पष्ट उल्लेख है। बौद्ध धर्म के प्रचार की बात ऊपर आ ही गयी है। सम्भव है इन मत मतान्तरों के कारण आपस में बैर बढ़ा और इसी से समरजीत के समय अगरोहे की दुर्दशा हुई हो। यहाँ यह भी लिख देना आवश्यक है कि अग्रवालों में आज भी अनेक घर जैनी हैं जो दिवाकर के समय से इस सम्प्रदाय को मानते चले आये हैं। परन्तु वैदिक धर्मी और जैन धर्मी अग्रवालों में परस्पर व्यवहार में कोई भेद नहीं है, जैसा राजवंशियों और नागवंशियों में है। इसलिये इस भेद के भीतर और भी कोई ऐतिहासिक घटना होगी जिसका अनुसंधान होना आवश्यक है। अब इस विषय को यहीं छोड़ आगे की राजकीय घटना देखें।

जिस समय का ऊपर वर्णन हुआ है उस समय अग्रवालों

की राजधानी अगरोहे में ही थी और अगरोहे का चरित्र ही उस समय के अग्रवालों का चरित्र है। अगरोहे के विध्वंस की बात ऊपर आई है। इसका विशेष विवरण देखें क्या मिलता है।

अगरोहा राजधानी के विध्वंस के सम्बन्ध में बहालसिंह ने लिखा है कि विध्वंस की यह घटना विक्रमीय सम्वत् ७५८ में हुई। उस समय धर्मसेन अगरोहे का राजा था। यह राजा प्रजा का शत्रु था और मालूम होता है कि उस समय अगरोहे में जो १५२ तालुके थे वे सब इसके विरुद्ध उठे थे। इसने धारा नागरी के राजा समरजीत को अगरोहे की सम्पत्ति का लोभ दिखाकर अपनी मदद के लिये बुलाया। समरजीत ने अगरोहे पर चढ़ाई की। गोकुलसेन राजवंशी और इन्द्रसेन नागवंशी ने बड़ी वीरता के साथ शत्रु का सामना किया पर अन्त में अगरोहे वालों की हार हुई और समरजीत की जीत हुई और उसने अगरोहे को लूट लिया। तब अगरोहे के अधिवासी कोल, पानीपत, नारनोल और झुनझुनूं इन स्थानों में जा बसे और तब से अगरवालों ने वैश्य वृत्ति धारण की। बांकेलाल लिखते हैं कि समरजीत ने अगरोहा लेकर धर्मसेन को बंगाल में राज करने के लिये भेज दिया और बंगाल के सेन और पाल इसी धर्मसेन के वंशज हैं। बंगाल में भी अगरवालों का राज्य था यह बात तो प्रत्यक्ष है क्योंकि नशीपुर का राज्य अभी तक वर्तमान है, जिसका राजकुल अग्रवाल है।

अगरोहे के विध्वंस की इन दो बातों से यह मालूम होता है

कि अगरोहे पर पहली बार सम्वत् ७५८ में आक्रमण हुआ और यद्यपि बहालसिंह ने लिखा है कि इसी समय अगरोहे के अधिकारी वहाँ से भाग कर कोल, पानीपत, नारनोल आदि स्थानों में जा बसे और उन्होंने वैश्य वृत्ति धारण कर ली तथापि यह भी प्रकट हो जाता है कि इसके पाँच सौ वर्ष बाद तक अगरोहे की अवस्था बहुत अच्छी थी क्योंकि सम्वत् १२५४ में शहाबुद्दीन गोरी ने आकर इस नगर को लूटा था। मालुम होता है कि इसी समय अगरोहे का विध्वंस हुआ है और इसी समय अगरवाल अगरोहे से भागकर युक्त प्रदेश, पंजाब और मारवाड़ के भिन्न-भिन्न स्थानों में जा बसे तथा खेती और वणिज व्यापार से अपनी जीविका निर्वाह करने लगे। सम्भव है कि इसी समय से अग्रवाल वैश्य कहलाने लगे हों।

भारतवर्ष के इतिहास में वैश्यों के वाणिज्य पराक्रम को बहुत ही कम स्थान मिला है। और इसीलिये शहाबुद्दीन गोरी की चढ़ाई के बाद से अग्रवालों का इतिहास अन्धकारमय है।

जब मुगलों का राज हुआ तब अग्रवालों की फिर बढ़ती हुई प्रथम मुगल सम्राट बाबर के बेटे हुमायूं के पश्चात् दिल्ली के तख्त पर हेमचन्द्र नामक कोई बादशाह बैठा था। ऐसा कहते हैं कि वह अग्रवाल था। इसके पश्चात् अकबर ने अग्रवाल वंशीय मधूसाह को अपना वजीर बनाया था। मधूसाही पैसा इन्हीं मधूसाह के नाम से चला था जो अब भी देखने में आता है।

इसके उपरांत मुसलमान राज्य के सूर्यास्त के समय तक

अग्रवाल जाति के किसी पुरुष का नाम इतिहास में विशेष प्रसिद्ध हुआ नहीं दिखाई पड़ता। बंगाल के इतिहास में मुसलमानों के राज्य के अन्त समय में जगत सेठ का नाम विशेष प्रसिद्ध हुआ। ये जगत सेठ अग्रवाल थे और बंगाल के नबाब के दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इन्हीं के खानदान में आधुनिक हिन्दी के आचार्य, प्रतिभाशाली लेखक और कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद मारवाड़ी अग्रवालों में प्रसिद्ध धर्मात्मा सेठ गुरूसहायमल पोद्दार और सेठ सूरजमल झुनझुनुवाले आदि अनेक प्रसिद्ध धर्मात्मा और दानी पुरुष हुए जिनकी कीर्ति चारों दिशाओं में फैल रही है।

[७]

अगरोहा

अग्रवालों के इतिहास में अग्रसेन के बाद अगरोहे का नाम ही और सब नामों से अधिक प्रसिद्ध है। अग्रसेन मूल पुरुष का नाम था तो अगरोहा अग्रवालों के केन्द्र स्थान का नाम था। महाराज अग्रसेन के नाम पर ही यह बसा था। इसमें सन्देह नहीं। यह स्थान कई सौ वर्षों तक अग्रवाल राजाओं की राजधानी रहा है और अब भी इसके स्मृति चिह्न बाकी हैं।

यह स्थान पंजाब जिले में हिसार के पास है। इसका नाम भी अभी यही है परन्तु अब यह एक साधारण ग्राम-सा रह गया

हैं और इसके आस-पास प्राचीन राजधानी अगरोहे के खंडहर हैं जो कि तीन-चार मील की लम्बाई और चौड़ाई में दीख पड़ते हैं। इन खण्डहरों में यदि खोज की जाय तो आशा है कि अग्रवालों के प्राचीन इतिहास और अगरोहे के प्राचीन गौरव का परिचय करानेवाली बहुत-सी सामग्री मिले।

महाराज अग्रसेन ने स्वयं यह राजधानी बसायी या उनके बाद उनके पुत्रों ने इसे बसाया इसका निर्णय हम नहीं कर सकते पर इसमें सन्देह नहीं कि यदि अग्रसेन के समय में प्रतापनगर और आगरा ये ही दो राजधानियाँ रही हों और अगरोहा बाद को बसा हो तो अग्रसेन के ही किसी पुत्र ने इसे बसाया होगा। यह भी संभव है कि प्रताप नगर का ही नाम अग्रसेन के समय से अगरोहा पड़ा हो, क्योंकि प्रतापनगर का स्थान निर्देश भी अभी तक नहीं हुआ है।

अगरोहे का जो वर्णन मिलता है उसके अनुसार यह राजधानी चार मील चौड़े और चार मील लम्बे क्षेत्र में बसी थी और यहाँ अग्रवाल ही बसते थे। जो लोग अगरोहे को देखकर आये हैं वे बतलाते हैं कि यहाँ कई बड़े-बड़े महलों के चिह्न मिलते हैं जिससे यह मालूम होता है कि अगरोहा अपने समय में एक अत्यन्त समृद्धिशाली नगर था। राजधानी होने से समस्त राज्य की सारी शक्ति और शोभा उसी में एकत्र हुई थी यह कहने की आवश्यकता नहीं। कहते हैं कि यहाँ अग्रवालों के एक लाख घर थे और सब धनीमानी और धार्मिक थे। उनमें जाति

का अभिमान, धर्म का भाव और परस्पर सहानुभूति थी। उनके द्वार पर आकर कोई भिक्षुक असन्तुष्ट और निराश होकर नहीं लौटता था और अग्रवाल भाइयों के विषय में तो उन्हें ऐसा अभिमान था कि अगरोहे में किसी दीन-दुःखी अग्रवाल का मिलना असम्भव था। आज भी शिमला राजधानी में दीन-दुखियों का मिलना असम्भव है। पर शिमले के इस वैभव में और अगरोहे के उस वैभव में आकाश-पाताल का अन्तर समझिये। शिमले में दीन-दुःखी नहीं हैं इसका कारण वहाँ दीन-दुःखियों का प्रवेश ही नहीं है और अगरोहे में दीन-दुःखी नहीं थे इसका कारण दीन-दुःखी वहाँ जाकर धनी और समृद्धिशाली हो जाते थे। अगरोहे में एक लाख घर थे और वहाँ ऐसा रिवाज पड़ गया था कि यदि कोई गरीब भाई आ जाय तो घर पीछे एक-एक रुपया उगाह कर वह गरीब लखपति बना दिया जाता था। यह काम आज किसी राजधानी में देखने में नहीं आता। इसी कलकत्ता नगरी में हजारों देश भाई ऐसे हैं जो सड़कों पर सोते हैं और भीख मांग कर किसी तरह दिन काटते हैं। उन्हें कोई पूछता भी है? न सरकार को अपनी प्रजा का अभिमान है न प्रजा की किसी जाति को अपने जाति भाई का। अगरोहा आज खण्डहर बन गया है। पर जब वह जीता जागता राजनगर था उस समय वहाँ बड़े-बड़े प्रासाद ही नहीं थे जो दूर से ही दीन-दुखियों के नेत्रों को तुष्ट करके चले जाने का इशारा करते हों बल्कि उन प्रासादों में दया-धर्मशील लोग रहते थे जो अपने

निर्धन भाई को बैठने के लिये स्थान, आहार के लिये अन्न और गृहकार्य के लिये धन देते थे। धनी होना उन्हीं का सुफल है जो अपने भाइयों को भी धनी और सुखी बनावें। अगरोहे की यही शोभा थी।

अगरोहा सौभाग्य संपदा का निकेतन था। पर इसी सौभाग्य सम्पद ने सूए के मधुर कण्ठस्वर की तरह उसके साथ दगा की। सबसे पहले संवत् ७५८ में धाराधिपति समरजीत ने अगरोहे पर आक्रमण किया। अगरोहावासियों ने उसका सामना किया पर अगरोहे का राजा धर्मसेन अपने धर्म और सेना से अलग होकर पहले से ही समरजीत से मिला था और "घर का भेदिया लंका ढाहे" के न्याय से उसी की बदौलत अगरोहे की छाती पर समरजीत लात देकर आया और अगरोहे को उसने लूट लिया। यह कथा पहले आ चुकी है। परंतु इससे भी अगरोहा बच गया था। शायद इसी समय अगरोहे का राज वैभव भी नष्ट हो गया और अग्रवालों के लिये केवल ५२ मुहाल की जगह ही रह गई।

इसके बाद लगभग ५ सौ वर्ष तक अगरोहे के जीवन में कोई विशेष घटना नहीं हुई, इस बीच भारतवर्ष पर विदेशियों के अनेक आक्रमण हुए पर मालूम होता है कि जिस महमूद गजनवी ने हिन्दुस्तान पर १७ बार चढ़ाई की उसकी दृष्टि से अगरोहा बच गया था। परन्तु सन् ११६७ अर्थात् सम्वत् १२५४ में शहाबुद्दीन गोरी ने १ लाख २० हजार सेना के साथ जब भारत पर चढ़ाई की उस समय अगरोहे पर भी उसने धावा किया था

और इस बार अगरोहा बच नहीं सका—उसका सम्पूर्ण विध्वंस हुआ और अगरोहे के अग्रवाल युक्त प्रदेश, पंजाब और मारवाड़ के भिन्न-भिन्न स्थानों में जा बसे और वैश्यवृत्ति से जीविका निर्वाह करने लगे।

अगरोहे की इस तरह तीन अवस्थाएँ दिखाई देती हैं। पहले राजधानी थी, फिर ५२ महाल की जागीर हुई और अब खण्डहर है। क्या यह खण्डहर अग्रवाल जाति को अपने पूर्व वैभव का स्मरण कराकर फिर पराक्रम करने में प्रवृत्त न करेगा?

[८]

गोत्र समस्या

अग्रवाल जाति के १७॥ अथवा १८ गोत्र हैं। लोग कई प्रकार से इनका उच्चारण करते हैं। पर प्रायः सभी उच्चारण अशुद्ध हैं। शुद्ध रूपों का निर्णय करना भी कठिन ही है। "अग्रवाल उत्पत्ति" लेखक ने इन गोत्रों के शुद्धाशुद्ध नाम, वेद, शाखा, सूत्र और प्रवर की तालिका दी है वह उसी लेखक की जिम्मेदारी पर यहाँ दिये देते हैं :—

संख्या	गोत्र		वेद	शाखा	सूत्र	प्रवर
	अशुद्ध	शुद्ध				
१	गर्ग	गर्ग	यजुः	माध्यन्दिन	कात्यायन	५
२	गोयल	गोभिल	,,	,,	,,	३

३	❀ गोयन	गौतम	,,	,,	,,	३
४	मीतल	मैत्रेय	,,	,,	,,	३
५	⧫ जीतल	जैमीनि	,,	,,	,,	३
६	सिंगल	शौंगल	साम	कौस्थमी	गोभिल	६
७	बांसल	वत्स्य	साम	,,	,,	५
८	एरन	और्व	यजुः	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
९	कांसल	कौशिक	,,	,,	,,	३
१०	कंछल	कश्यप	साम	कौस्थमी	गोभिल	३
११	+ बुंगल (तुंदल)	तांडय	यजुः	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
१२	मंगल	मांडव्य	ऋक्	शाकल्य	आश्वलायन	३
१३	विंदल	वसिष्ट	यजुः	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
१४	ढेलन	धौम्य	,,	,,	,,	३
१५	मुधकल	मुदगल	ऋक	शाकल्य	आश्वलायन	३
१६	टेरन	धान्याश	यजुः	माध्यन्दिन	कात्यायन	३
१७	तायल	तैतर्य	,,	,,	,,	३
१८	नागल	नागेन्द्र	साम	कौस्थमी	गोभिल	३

अशुद्ध नामों को शुद्ध करने का यह प्रयत्न कहाँ तक सफल हुआ है यह हम नहीं कह सकते। दो-एक बातें स्पष्ट दीख पड़ती हैं। वह लिखते हैं पहले तो इसमें गौण गोत्र ही नहीं है। उसके

❀ गोयन को कहीं "गौण" और कहीं "गोलण" भी कहते हैं।

⧫ यह आमतौर पर "जिन्दल" कहा जाता है।

+ यह "तुन्दल" है, बुंगल नहीं।

बदले गोयन (गौतम) है। भाषा शास्त्र के अनुसार इनमें से अनेक रूप शुद्ध सिद्ध नहीं हो सकते। टेरन का धान्याश कैसे हो सकता है? अस्तु। गौण गोत्र लेखक ने माना ही नहीं है। परन्तु किंवदन्ती के अनुसार यह गौण गोत्र आधे गोत्र के अर्थ में है। आधा गोत्र क्यों हुआ इसकी उत्पत्ति यहाँ बतायी जाती है। एकबार गर्ग गोत्रियों ने अनजान में सगोत्र विवाह कर लिया। तब से गर्ग गोत्र की यह शाखा फूट निकली और यह गौण कहलायी। धर्मशास्त्र में सगोत्र विवाह पाप माना गया है और इसका बड़ा कठोर प्रायश्चित है। परन्तु यदि ऐसा हुआ हो कि सगोत्र विवाह होने का पता उसी समय न लगकर उस पीढ़ी के बाद लगा तो प्रायश्चित असम्भव है। क्योंकि प्रायश्चित करनेवाला ही जब न रहा तो प्रायश्चित कौन करे? परन्तु गौण गोत्र की उत्पत्ति की यह किंवदन्ती झूठ भी हो सकती है और ऐसी हालत में "अग्रवाल-उत्पत्ति" के लेखक ने अपनी तालिका में जो "गोयन" गोत्र देकर उसका शुद्ध रूप गौतम बताया है, वही ठीक हो सकता है। तब १७॥ गोत्र की बात झूठ हो जाती है और गोत्र १८ ही मानने पड़ते हैं। तब १७॥ गोत्र की बात कहाँ से निकली? सम्भव है कि महाराज अग्रसेन ने जो १७॥ यज्ञ किये उनसे गोत्रों की संख्या १८ होने पर भी १७॥ मानी गयी हो। यज्ञ यद्यपि १७॥ हुए तथापि फल तो १८ ही यज्ञों का हुआ। दूसरी बात यह कि गोत्र आधा कैसे हो सकता है? आधे का तो कुछ मतलब ही नहीं है। इसलिये १८ गोत्र ही मानने चाहिये।

ये १८ गोत्र महाराज अग्रसेन के १७॥ यज्ञों से हुए। गोत्र शब्द का अर्थ सन्तान है। और "वंश परम्परा प्रसिद्धमादि-पुरुष ब्राह्मण रूपम्" अर्थात् वंश के जो आदि पुरुष होते हैं उनके नाम को "गोत्र" कहते हैं और ये आदि पुरुष ब्राह्मण ही होते हैं। कारण सभी वर्णों के आदि पुरुष ब्राह्मण या ब्रह्मर्षि हैं। यथा :—

जमदग्निर्भरद्वाजो विश्वामित्रात्रि गौतमाः।
वशिष्ठकाश्यपागस्त्या मुनयोगोत्रकारिणः॥

जमदग्नि, भरद्वाज, विश्वामित्र, अत्रि, गौतम, वशिष्ठ, काश्यप, अगस्त्य आदि ऋषि ही गोत्रों के प्रवर्तक हैं। गोत्रों की मूल संख्या २४ मानी गयी है। पीछे इसका और भी विस्तार हुआ है। जिस कुल का जो गोत्र है वही वंश परम्परा से चलता जाता है। महाराज अग्रसेन ने सन्तान की इच्छा से यज्ञ किये थे और इसलिये यही मालूम होता है कि उन यज्ञों को ही उन्होंने अपने पुत्र अर्पण कर दिये होंगे और उन यज्ञों से यह नयी सृष्टि मानी गयी होगी। यह तो स्पष्ट ही है कि यज्ञ के ऋषियों ने अग्रसेन के पुत्रों को "गोत्र" दिये। धर्मशास्त्र में यह व्यवस्था है कि ब्राह्मणेतर द्विजों को ब्रह्मर्षि "गोत्र" दान कर सकते हैं।

[६]

अग्रवालों के पुरोहित

पुरोहितो हितो वेदस्मृतिज्ञः सत्यवाक् शुचिः।
ब्राह्मणयो विमलाचारः प्रतिकर्ता पदामृजुः॥

हिन्दू जाति के किसी वर्ण या जाति का इतिहास उसके पुरोहित वर्ग के इतिहास के बिना पूर्ण नहीं हो सकता क्योंकि समाज को शिक्षा देने का काम ब्राह्मण पुरोहितों के हाथ में रहा है और आज यद्यपि समस्त हिन्दू जाति के साथ ब्राह्मण जाति का भी अधःपात हुआ है तथापि एक समय था जब ब्राह्मण संसार के हित के लिये सारे सांसारिक सुखों पर लात मार कर तपोवन में तपस्या करते अथवा जन समाज में रहकर "यदृच्छालाभ सन्तुष्टः" होकर समाज के हित साधन में तत्पर रहते थे। इनका एकमात्र व्यवसाय अध्ययन, अध्यापन और समाज की व्यवस्था ही था। ये वेदों और स्मृतियों को जानते थे, सदा सत्य बोलते थे और सत्य का ही आचरण करते थे इसलिये इनसे बढ़कर किसी का कोई हित नहीं था और इसलिये ये पुरोहित कहलाते थे। हम जिस इतिहास का परिचय देने का यत्न कर रहे हैं उसमें ब्राह्मणों की यही पवित्र और आदर्श अवस्था थी।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जिन धनपाल को महाराज अग्रसेन के पूर्वजों का मूल पुरुष माना है उन धनपाल को प्रताप नगर की राजगद्दी पर ब्राह्मणों ने ही बैठाया था। ब्राह्मण स्वयं राज्य सुख नहीं भोगते थे, न राजकाज स्वयं करते थे वे क्षत्रियों द्वारा ही राज्य कराते थे और स्वयं केवल सात्विक उपदेश दिया करते थे। महाराज अग्रसेन के समय के १८ ऋषिकुलों के नाम अब तक अग्रवालों को याद हैं। महाराज अग्रसेन ने सन्तान प्राप्ति के लिये जो यज्ञ किये थे वे इन्हीं १८ ऋषिकुलों के आचार्यों ने

कराये थे और उन्हीं आचार्य्यों के पास अग्रसेन के पुत्रों ने वेद वेदांग, धनुर्वेद, धर्मशास्त्र और नीति की शिक्षा पायी थी। इतना ही नहीं बल्कि उन्हीं आचार्यों के नाम से समस्त अग्रवाल जाति के गोत्र भी वंश परम्परा से चले आते हैं। उन आचार्यों की ब्राह्मण सन्तति के भी वे ही गोत्र हैं। इस तरह अग्रवाल क्षत्रिय अथवा वैश्य जो भी कहिये उनसे और उनके पुरोहितों में परस्पर अविछिन्न सम्बन्ध है। यथार्थ में यह पहले गुरुशिष्य का सम्बन्ध था यद्यपि काल की कुटिल गति से अब न अग्रवालों की वैसी अवस्था है न उनके पुरोहितों की ही, जैसी पहले थी।

अग्रवाल वंश के जब अच्छे दिन थे तब अपने पुरोहितों के सम्मान के लिये उसने उन पुरोहितों को गौड़ग्राम अर्पण किया था, जिसे अब गुडगांवां कहते हैं। अग्रवालों के पुरोहित गौड़ ब्राह्मण ही होते हैं और उनके गोत्र भी यजमान के गोत्र से मिलते हुए रहते हैं अर्थात् जिस यजमान का जो गोत्र होगा वही उसके पुरोहित का भी होगा। ये पुरोहित ही अग्रवालों के सब नित्य नैमित्तिक कर्म कराते हैं। उनका यह अधिकार पहले से चला आता है और यह बड़ा पवित्र अधिकार है। परन्तु अब पुरोहित भी अपने आप को भूल गए हैं और उनके यजमान भी। इतिहास के स्वच्छ जल में अपना चेहरा देखने से शायद दोनों को अपने सिंह रूप की पहचान हो जायगी।

[१०]

रहस्यमय बातें

यों तो अग्रवालों का संपूर्ण इतिहास ही रहस्यमय है, परन्तु उससे भी कुछ न कुछ ऐतिहासिक तत्व मिल जाता है। इस तरह इतिहास का कुछ भाग हमने इस "अग्रवाल इतिहास परिचय" में देने का प्रयत्न किया है। परन्तु इसमें बीच-बीच में कुछ ऐसी बातें मिलती हैं जिनका आशय ठीक समझ में नहीं आता। ऐसी कुछ बातों पर हम इस प्रकरण में विचार करेंगे।

(१)

"एक समय नागलोक से नागों का कुमुद नामक राजा अपनी माधवी कन्या को लेकर भूलोक में आया और उस कन्या को देखकर इन्द्र मोहित हो गया और नागराज से वह कन्या माँगी। पर नागराज ने इन्द्र को वह कन्या नहीं दी और उसका विवाह राजा अग्रसेन से कर दिया। यही माधवी कन्या सब अगरवालों की जननी है और इसी नाते से हमलोग सर्पों को अबतक मामा कहते हैं।

यह नागलोक कहाँ है और सर्प को मामा कहने का क्या मतलब है? नाग शब्द का अर्थ पौराणिक परिभाषा के अनुसार तक्षक, कर्कोट आदि देवयोनि मनुष्यों से है जिनके सिर पर सांप के फनके आकार की जटा होती थी। कहते हैं कि आसाम के

अबोर प्रदेश में अभी ऐसे लोग पाये जाते हैं और इससे यह अनुमान होता है कि राजा कुमुद इसी तरफ किसी राज्य के राजा होंगे जो अपनी कन्या को व्याहने के लिये अग्रसेन की राजधानी में आये थे। अग्रवाल जाति में अब भी नागकन्या की स्मृति में विवाह के अवसर पर बधू के सिर पर सांप के फनके आकार की चूँड़ी बांधी जाती है और साँप को मामा कहने की जो प्रथा कहीं-कहीं पड़ गई है उसका आरम्भ विनोद से ही हुआ होगा और इस समय विनोद में ही उसकी गिनती है।

(२)

महाराज अग्रसेन के जो सन्तति नागकन्या से हुई वह नागवंशी कहलायी। परन्तु रहस्य की बात यह है कि नाग-कन्या से विवाह स्वयं अग्रसेन ने किया था अथवा उनके पुत्रों ने। इस विषय में राजवंशियों और नागवंशियों में बड़ा मतभेद है। राजवंशियों के हिसाब से महाराज अग्रसेन के १८ पुत्र थे और उनके १८ ही गोत्र थे और बासक की १८ ही कन्याएँ थीं। यह १८ का सिलसिला कुछ अस्वाभाविक-सा मालूम होता है। नागवंशियों के हिसाब से राजा अग्रसेन ने ही नागलोक (या अहिनगर) के राजा की कन्या से विवाह किया था और उसकी संतान नागवंशी कहलायी। उपरानी की सन्तति के विषय में क्या व्यवस्था हुई इसका कहीं उल्लेख नहीं है।

(३)

अनूपसिंह राजवंशी ने नागकन्याओं के सम्बन्ध में बड़ी

विचित्र बात लिखी हैं :—"वह दिन में तो मनुष्य रूप में और रात को साँपों के रूप में रहती थी। इसी कारण से उनके पति दिन पर दिन निर्बल और मनमलीन रहते थे। जिस समय राजा अग्र को इस बात का निश्चय हुआ, उन्होंने नागकन्याओं को उनके पिता के घर भेज दिया और अपने पुत्रों का दूसरा विवाह अन्य राजाओं की कन्याओं से कर दिया। नागकन्याओं के पिता ने यह बात जानी कि साँप के रूप में रहने से हमारी पुत्रियों को हमारे घर भेज दिया गया है, तब किसी युक्ति से अपनी पुत्रियों में से रूप बदलने की शक्ति खींच ली और उनको महाराज अग्र के घर भेज दिया। उनसे जो संतान उत्पन्न हुई वह अगरवाल विशनी कहलाई। यह शब्द विषनी है जिसका अर्थ विषके है।" यह बात बिलकुल बेसिर पैर की है। "नाग" शब्द ने ही यह किस्सा गढ़ाया है। इसमें कोई ऐतिहासिक तत्व नहीं दिखाई देता।

(४)

राजवंशी "दस्से" कहलाते हैं और नागवंशियों से उनका खान-पान नहीं है यह भी एक रहस्य की बात है। सुखानन्द मालवी "आधे गोत्र से राजा की विरादरी" याने राजवंशी की उत्पत्ति मानते हैं परन्तु राजवंशियों में तो १८ गोत्र प्रचलित हैं। फिर राजवंशियों के विषय में जो अपवाद है उसका मूल क्या है?

(५)

महाराज अग्रसेन प्रेत की सहायता से हरद्वार गये थे इसका अर्थ कुछ समझ में नहीं आता।

(६)

अग्रसेन और इन्द्र का नागकन्या के पीछे युद्ध हुआ। इसका अर्थ यह हो सकता है कि नागकन्या माधवी से विवाह होने के पश्चात् अग्रसेन के राज्य में अवर्षण के कारण बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा हो। अतएव इन्द्र को वश में करने के लिये अग्रसेन ने तपस्या की हो और महादेवजी ने प्रसन्न होकर कहा है कि "इन्द्र को वश में करने के लिये महालक्ष्मी की उपासना करो।" आजकल रुपया होने से ही दुर्भिक्ष टल जाता है और न होने से फसल अच्छी होने पर भी दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ता है।

(७)

अग्रवालों के १७॥ गोत्रों का कारण १८वाँ आधा यज्ञ ही मालूम होता है। परन्तु आधे गोत्र का कुछ मतलब नहीं है। इसलिये १८ गोत्र ही मानना चाहिये।

(८)

महाराज अग्रसेन को १८ वें यज्ञ में हिंसा से ग्लानि हो गई और ऋषियों ने भी उन्हें क्षत्रिय धर्म छोड़कर वैश्य धर्म ग्रहण करने का उपदेश दिया। अग्रवालों के वैश्य होने का यही कारण माना जाता है। परन्तु अग्रसेन ने भी राजपाट त्यागा नहीं था। इसलिये अग्रसेन को जिस वैश्य धर्म का उपदेश मिला उससे वैश्य धर्म का कुछ विशेष अर्थ मालूम होता है। शहाबुद्दीन गोरी द्वारा अगरोहे का विध्वंश होने तक अग्रसेन के वंशज राजा और ताल्लुकेदार ही रहे, परन्तु यह संभव है कि अगरवालों ने बहुत

पहले से ही व्यापार वाणिज्य करना शुरू कर दिया हो। जिस समय अगरोहे में एक लाख घर लखपतियों के थे उस समय अगरोहा व्यापार का ही एक बड़ा भारी केन्द्र रहा होगा।

[११]

उपसंहार

पिछले परिच्छेदों में अग्रवाल जाति के इतिहास का जो कुछ परिचय मिला वह उसके क्षात्र जीवन का ही परिचय है। महाराज धनपाल से लेकर अग्रसेन तक और अग्रसेन से धर्मसेन तक जिन जिन पुरुषों के नाम आये हैं वे राज पुरुष थे और जिन घटनाओं का उल्लेख हुआ है वे राजकीय घटनाएँ थी। अग्रसेन के चरित्र में एक जगह यह वर्णन आया है कि ऋषियों ने उन्हें वैश्य धर्म ग्रहण करने का उपदेश दिया था। कहा जाता है कि उस समय वैश्यों का अभाव हो चला था, परन्तु अग्रसेन ने वैश्य धर्म ग्रहण किया या नहीं और यदि किया तो वैश्य धर्म का कौन सा काम उन्होंने किया इसका कोई स्पष्ट निर्देश नहीं है। हाँ जिस समय महाराज अग्रसेन के प्रथम विवाह के पश्चात् उनके राज्य में अवर्षण के कारण बड़ा भारी दुर्भिक्ष पड़ा था उस समय वे राज्य का प्रबन्ध अपनी रानी को सौंपकर "इन्द्र को वश में करने के लिये" तपस्या करने काशीपुरी में गये थे और वहाँ महादेवजी ने प्रसन्न होकर उन्हें महालक्ष्मी की उपासना करने का उपदेश दिया था। तब महाराज अग्रसेन ने महालक्ष्मी की उपा-

सना की और उन्हें प्रसन्न किया। इस महालक्ष्मी की उपासना का हेतु धनोपार्जन हो और उपासना की क्रिया वैश्य कुलोचित्त वाणिज्य व्यापार हो तो अग्रसेन के चरित्र में क्षात्र जीवन के साथ वैश्य कर्म का भी मेल हुआ था, ऐसा कह सकते हैं। हरिद्वार में जाकर महालक्ष्मी की उपासना करके लौट आने पर महाराज अग्रसेन ने अपनी राजधानी में महालक्ष्मी का एक मन्दिर बनवाया था। इस घटना के अतिरिक्त वैश्य धर्म सूचक और कोई बात लिखी हुई नहीं मिलती। इसके पश्चात् भी जब महाराज अग्रसेन अपने युवराज को राज्य सौंपकर वाणप्रस्थ हुए और राज पुत्र राज्य करने लगे तो उनके सम्बन्ध में भी किसी ने यह नहीं लिखा है कि उन्होंने अमुक व्यवसाय किया था अथवा अमुक व्यवसाय करके लक्ष्मी प्राप्त की थी। बात यह है कि स्वयं राज्य कर्त्ता वाणिज्य व्यापार नहीं कर सकते; कम से कम जिस द्वापर युग की ये बातें हैं उस समय वैश्य वृत्ति युक्त राज्य पद्धति इस देश में नहीं थी। पर यह संभव है कि अग्रसेन के बाद उनके जो पुत्र राजगद्दी पर बैठे उनको छोड़ और पुत्रों ने वाणिज्य व्यापार किया हो। अथवा इन पुत्रों के पुत्रों ने किया हो। कम से कम जिस समय अगरोहे में अग्रवालों के एक लाख घर थे, और ये सभी लक्षाधीश थे, उस समय अगरोहा व्यापार का ही एक बड़ा भारी केन्द्र रहा होगा इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में वाणिज्य व्यापार की गति को यह महत्व प्राप्त नहीं हुआ जो अन्यान्य

विषयों को प्राप्त हुआ था। इसलिये प्राचीनकाल के किसी भी इतिहास में व्यापार का इतिहास नहीं है। इसलिये आज हमें यह पता नहीं लगता कि अगरोहा जो राजधानी होने के साथ साथ व्यापार का इतना बड़ा केन्द्र था वह इस पद को किस क्रम से प्राप्त कर सका था, किस प्रकार और किस क्रम से अग्रवाल जाति में व्यापार की उन्नति हुई थी। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि एक लाख लक्षाधीश अग्रवालों के अगरोहे का वर्णन जिस काल का है उससे बहुत पहले से अग्रवाल जाति व्यापार में कुशल हो चुकी थी। परन्तु इस व्यापार कौशल का इतिहास छिपा हुआ है और हमें आकस्मात् इस घटना से सामना करना पड़ता है कि अगरोहे के प्रभूत धन भण्डार का समाचार पाकर घोर-वंशीय शहाबुद्दी ने उसपर चढ़ाई की और अगरोहे का सब धन लूटकर उसका विध्वंश कर डाला। इस घटना के न पहले का इतिहास मिलता है और न बाद का ही।

अगरोहे के विध्वंस के पश्चात् इतिहास लेखकों ने इतना ही लिखा है कि अग्रवाल वहाँ से भागकर कोल, नारनौल, दिल्ली और झुनझुनूं इन स्थानों में जा बसे और वैश्य वृत्ति से अपना जीवन निर्वाह करने लगे। इसके पश्चात् क्या हुआ ? जवाब में मुगलों के समय फिर अगरवालों की बढ़ती हुई—यह बतलाया जाता है। परन्तु इस बढ़ती का दृष्टान्त मधूसाह का वजीर होना ही बताया गया है, कोई ऐसी घटना नहीं बताई गई जिससे अग्रवालों के तत्कालीन व्यापार जीवन पर कुछ प्रकाश

पड़े और वह घटनाक्रम-वह वैश्य वृत्ति के विकास का क्रम हमारे सामने नहीं आता जो वर्तमान अग्रवाल वैश्य जाति का यथार्थ इतिहास है और जिसके कारण ही आज अग्रवाल वैश्य विशेषकर हिन्दू जाति में सबके सिर मौर हैं।

वर्तमान सदा ही अतीत का परिणाम होता है। आज अग्रवाल जाति जो कुछ है वह आज तक के अपने कृताकृत के फल-स्वरूप है। आज जिन मारवाड़ी अग्रवालों को हम देखते हैं कि इस कोने से उस कोने तक सर्वत्र फैले हुए हैं और प्रायः प्रत्येक स्थान का व्यापार अपने हाथ में रखे हुए हैं, उन्हें यह व्यापार कुशलता एक दिन में नहीं प्राप्त हुई, बल्कि इसके पीछे कई शताब्दियों का इतिहास है। उसी प्रकार अग्रवालों के शुद्ध आचार-विचार, धर्म परायणता, परिश्रमशीलता और साहस आदि गुणों की जो प्रशंसा है उसके पीछे भी कई शताब्दियों का इतिहास है—कितने ही पुरुषों का संचित किया हुआ पुण्यबल है।

इस इतिहास अथवा पुण्य बल का वर्णन किसी विशेष ग्रन्थ में किया हुआ नहीं है, तथापि अग्रवाल जाति की वर्तमान अवस्था और इतिहासों में मिलने वाली दो एक बातों के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि राजा धर्मसेन के समय के लगभग अग्रवाल जाति में वैश्य धर्म प्रधान हो गया था। यह वह समय था जब अग्रोहे में राजा नहीं बल्कि जमीन्दार थे और उनके बावन महाल की जागीर थी। इस समय भी अग्रोहे का वैभव बहुत बढ़ा-चढ़ा था और अग्रोहे के सभी अधिवासी धनी

थे। इस समय अग्रवालों को व्यापार करने का पूरा अवसर था और इसीसे उन्हें धन भी प्राप्त हुआ होगा। इनकी आपस की फूट के कारण धाराधिपति समरजीत को चढ़ाई करने का मौका मिला और उसने अग्रोहे को लूटा। परन्तु इससे अग्रोहे को कोई भारी धक्का न लगा होगा क्योंकि राज्य परिवर्तन होने पर भी अग्रोहे के लोग अग्रोहे में ही थे और वे फिर पूर्ववत् व्यापार आदि करने लगे और यह ५०० वर्ष व्यापार का केन्द्र बना रहा। शहाबुद्दीन गोरी के आने पर इस केन्द्र का विध्वंस हुआ और अग्रोहे के अग्रवाल वहाँ से चारों दिशाओं में फैल गये। इस महान संकट से यह लाभ हुआ कि अग्रवालों का देश देशान्तर में जाकर अपना घर कायम करने और व्यापार करने का साहस बढ़ गया, खासकर उन अग्रवालों का जो मारवाड़ में जा बसे क्योंकि अग्रोहे से निकलकर ये लोग मारवाड़ में आये तो मारवाड़ की निर्जला भूमि ने इनका व्यापार निमित्तक साहस और भी बढ़ा दिया। सात शताब्दियां उस बात को हुए बीत चुकी हैं। बीच में कितने ही राज्य परिवर्तन हुए पर मारवाड़ी अग्रवालों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वे क्रमशः भारत के सब प्रान्तों में फैलने लगे और आज हम देखते हैं कि हिन्दुस्तान में कोई बस्ती ऐसी नहीं है जहाँ मारवाड़ी अग्रवाल न बसा हो। अफगानिस्तान से लेकर आसाम तक और नेपाल से लेकर लंका तक जितने स्थानिक व्यापार हैं वे प्रायः मारवाड़ी अग्रवालों के हाथ में हैं और इस कलकत्ते में जो व्यापार में हिन्दुस्तान का प्रधान

केन्द्र है, अंग्रेजों के बाद मारवाड़ी अग्रवालों का ही नम्बर है। इस प्रकार अपने घर का मोह छोड़कर दूर दूर स्थानों में व्यापार के निमित्त जा बसने का यह साहस आज का नहीं है, यह कम से कम ७०० वर्षों का अभ्यास है। इसके साथ मारवाड़ी अग्रवालों में जो व्यापार कौशल है, परिश्रमशीलता और सहिष्णुता है वह भी ७०० वर्षों के अभ्यास का फल है।

परन्तु इससे कोई यह न समझे कि मारवाड़ी हिन्दुस्तान के यहूदी हैं, जिनका एकमात्र व्यवसाय धन खींचना है और कुछ नहीं। मारवाड़ी अग्रवाल व्यापार में जितने चतुर हैं उतने ही वे दानवीर और धर्मपरायण भी हैं। मारवाड़ियों की धर्मशालाएँ और गौशालाएँ तथा क्षेत्र आदि सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। प्रायः प्रत्येक तीर्थ क्षेत्र में धर्मशालाएँ मौजूद हैं और गोरक्षा के काम में मारवाड़ियों ने जितना धन खर्च किया है उतना और किसी जाति ने नहीं बल्कि यह कहना चाहिये कि जब से गोवध आरम्भ हुआ है तब से अब तक उसका प्रतिकार यदि किसी ने कुछ किया है तो मारवाड़ियों ने ही किया है। इस उपाय से गोवध बन्द नहीं हुआ यह सही है; पर मारवाड़ियों ने गौशालाएँ चलाकर गौ के प्रति अपने जो पूज्य भाव की रक्षा की है, उतनी भी और किसी जाति ने नहीं की है। शायद ही कोई ऐसी गोशाला हो जिसमें मारवाड़ियों का धन न लगा हो। यह धर्मपरायणता और दानवीरता भी पूर्व पुरुषों का ही पुण्य बल है। अग्रवालों का जिस समय राज्य था उस समय धर्म के लिये उन्होंने अपने कुल

पुरोहितों को ग्राम भी दिया था। अग्रवासी राजाओं ने अपने पुरोहितों को गोह ग्राम का आधिपत्य अर्पण किया था। आज राज्य नहीं है, थोड़ा धन है तो धन ही दे रहे हैं। अग्रवाल जाति का खान-पान, रहन-सहन और रिवाज भी शुद्ध पवित्र और शिष्ट सम्मत ही रहता आया है, यद्यपि अब चाल कुछ बिगड़ने लगी है।

जैसे वर्तमान अतीत का पर्यवसान है वैसे ही भविष्य वर्तमान का फल है। आज अग्रवाल जाति को व्यापार कुशल, परिश्रमशील, साहसी, धर्मपरायण और दानशूर कहलाने का जो गौरव प्राप्त है वह अतीत के इतिहास का उपसंहार है अथवा अपनी प्राचीन विचार पद्धति के अनुसार कहें तो पूर्वपुरुषों के पुण्यबल का फल है। उसी प्रकार आज हम जो कर रहे हैं या आगे करेंगे उसी का फल हमारी सन्तति को भविष्य में प्राप्त होगा। इतिहास का यही काम है कि वह भूतकाल की गति का ज्ञान कराकर भविष्य की प्रगति का मार्ग दिखावे। यहाँ तक हमने भूतकाल की गति का परिचय पाया, अब वर्तमान को देख कर आगे बढ़ने का उपाय सोचें।

वर्तमान अवस्था की अच्छी बातों का उल्लेख ऊपर हो चुका है और उनकी रक्षा करना परम धर्म है। पर अब चाल क्या बिगड़ने लगी है वह भी देखना चाहिये। क्योंकि उन्नति का रास्ता यही है कि जो दोष हों उन्हें दूर करें। सबसे पहली बात यह देखने में आती है कि क्या अग्रवाल वैश्य और क्या उनके

पुरोहित—धर्म-कर्म की शिक्षा से वंचित रहते हैं। अगले समय में क्या था और अब क्या हो गया है। जिन पुरोहितों ने अग्रसेन के पूर्व पुरुष धनपाल को राजगद्दी पर बैठाया था, जिन्होंने अग्रसेन के पुत्रों का गोत्र से संस्कार कराया था, जो ऋषि कहलाये और ऋषि कुलों में जो द्विजों की सन्तानों को वेद-वेदांग, धनुर्वेद और व्यवसाय शास्त्र पढ़ाया करते थे और स्वयं निःस्वार्थ रहते थे आज उनकी यह क्या दशा है कि मुट्ठी भर दाने के लिये दीन होकर अधम वृत्ति स्वीकार किये हुए हैं। जो पुरोहित पत्नी गुरूमाता कहलाती थी आज वह पैसे के लिये पैसे वाली के पैर में मेंहदी लगाने का धन्धा करती है। जो विधवा ब्राह्मणी पति के साथ सती हो जाती या वैराग्य वृत्ति धारण कर पति के ध्यान में अपना शेष जीवन उत्सर्ग करती थीं, आज उन्हें कहीं परिचारिका, कहीं विश्ववार्तावाहिका और कहीं जार दूतिका के रूप में देखकर किस हिन्दू का हृदय शतशः विदीर्ण न होगा? धर्म ही समाज का आधार है—सदाचार ही समाज की सत्ता है। क्या अग्रवालों के पुरोहित इस नरक से अपने को और अपने साथ अग्रवाल जाति को बचाने का प्रयत्न नहीं करेंगे? समाज में व्यभिचार का प्रवेश हुआ है और यह पहली बात है कि जिसका सबसे पहले प्रतिकार होना चाहिये। दूसरी बात शिक्षा की है। अग्रवाल और उनके पुरोहित दोनों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वे सद्धर्म और सदाचार में पले हों और अपने कर्म में प्रवीण हों। पुरोहितों की फिर ऐसी अवस्था होनी चाहिये जैसी

पहले थी अर्थात् वे इस योग्य हों कि समाज को रास्ता दिखा सकें और वैश्य सन्तानों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये कि वे सदाचार सम्पन्न होकर व्यापार में कुशल हों। आजकल अग्रवाल सन्तान में चटक-मटक, दुर्व्यसन और विलासिता पूरी मात्रा में आ गई है। इसका कारण सदाचार की शिक्षा का अभाव है। इसके लिये वर्तमान शिक्षालय उपयुक्त नहीं है, स्वतंत्र शिक्षालयों का बनाना अत्यन्त आवश्यक हो गया है। बालकों की शिक्षा ५ वर्ष से १० वर्ष की अवस्था तक निःशुल्क पाठशालाओं में होनी चाहिये और आगे १० से १६ वर्ष की उम्र तक स्वतन्त्र जातीय विद्यालयों में अनिवार्य करनी होगी। इसके साथ ही साथ विद्यार्थी गृह स्थापित करना होगा। वर्तमान समय में काम चलाने के लिये यही गुरूकुल—यही ऋषिकुल माना जाना चाहिये। जबतक ऐसी व्यवस्था न हो तबतक वास्तविक शिक्षा का प्रचार कठिन है।

अब इसके बाद सोचने का यह विषय है कि व्यापार में हम लोगों को और आगे किस तरह बढ़ना चाहिये। यह स्मरण रहे कि क्या व्यक्ति और क्या जाति, सबकी यही गति है कि जो आगे नहीं बढ़ता उसे पीछे हटना पड़ता है। सात सौ वर्ष से हमलोग आगे बढ़ रहे हैं पर अब आगे बढ़ने की गति अंगरेजी माल की दलाली में ही रुक गयी है। यह पीछे हटना है, जो ठीक नहीं है। अपने देश का अपना धन विदेशियों को बटोर कर दे देना है। इसलिये हमलोगों को व्यापार में आगे बढ़ने के

लिये नये उपाय बराबर करते रहना चाहिये। हिन्दुस्तान के अन्दर कितने ही ऐसे व्यवसाय हैं जो लाभ के साथ किये जा सकते हैं। परन्तु हम एक खास व्यवसाय की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं और वह व्यवसाय "कृषि गौरक्षवाणिज्यम् वैश्य कर्म स्वभावजम्" में से ही एक हैं और जिससे देश का बड़ा उपकार होने वाला है। विदेशी कम्पनियों के गुमास्ते यहाँ आकर इस देश का अन्न बटोर ले जाते हैं और यहाँ सुकाल में भी अकाल पड़ता है।

यदि हम भारत के प्रत्येक प्रदेश का वह अन्न जो जहाँ पर्याप्त से अधिक है, खरीद लिया करें और जब जैसा मौका हो लाभ लेकर बेचें तो लाभ की दृष्टि से भी यह बहुत अच्छा होगा और देश-कार्य की दृष्टि से तो इससे बढ़कर उपकार का साधन हमारे पास दूसरा हो ही नहीं सकता। इसी मेल का दूसरा काम दूध का व्यवसाय है। परम्परागत धर्म विचार के अनुसार गोरस बेचना पाप कहा जाता है। परन्तु इस समय तो यह गोरक्षा में परिणत हो गया है। कलकत्ता जैसे बड़े शहरों में ग्वालों के हाथ से उनके द्वारा यह व्यवसाय कराया जा सकता है। एक बड़ा भारी काम और है। इस समय देश में मिलों की कमी के कारण कपड़े के अभाव से बड़ा कष्ट हो रहा है। इसलिये चरखे-करघे आदि प्राचीन कामों का प्रचार करना बहुत ही आवश्यक प्रतीत होता है। इधर भी ध्यान देना जरूरी है। इस तरह ये तीनों काम यदि मारवाड़ी अग्रवाल अपने हाथों में कर लें तो

हम कह सकते हैं कि पूर्व पुरुषों का पुण्यबल हमने आगे और बढ़ाया है, घटाया नहीं।

अग्रवाल जाति का इतिहास परम उज्ज्वल है, जिसका कुछ परिचय इस पुस्तक में दिया गया है। भावी इतिहास इससे भी अधिक उज्ज्वल होना चाहिये। प्राचीन इतिहास का पूरा परिचय हम नहीं दे सके हैं, यह काम बहुत श्रम और समय से ही साध्य होने-वाला है। हमें यह आशा है कि जो कुछ परिचय हम दे सकें हैं, उससे अग्रवाल जाति के इतिहास की जिज्ञासा बढ़ेगी और लोग इस काम में अग्रसर होंगे। भविष्य की गति के लिये भी संक्षेपतः हमने कुछ संकेत किये हैं और हमें आशा है कि इन संकेतों के अनुसार अग्रवाल जाति की शिक्षा-दीक्षा और व्यापा-रिक उन्नति की कोई कार्य-पद्धति शीघ्र ही अमल में लाई जायेगी।

॥ इति शुभम् ॥

बालचन्द्र उवाच

....जिस जाति के खड़े होने के लिए इतिहास की आधार भूमि ही नहीं है, वह इस जीवन-संग्राम में ठहर नहीं सकती, क्योंकि ठहरने की जगह तो इतिहास ही है।

●

....राजा देवता है, तो प्रजा भी देवता है। राजा यदि राक्षस है, तो प्रजा भी ब्रह्म राक्षस बन जाती है। महाराज अग्रसेन स्वयं धर्मात्मा थे, उनकी प्रजा भी धर्मात्मा थी। सब द्विज वेदों का अध्ययन करते और त्रिकाल साधते थे।

●

....धनी होना उन्हीं का सुफल है, जो अपने भाइयों को भी धनी और सुखी बनावें। अगरोहे की यही शोभा थी!

●

....धर्म ही समाज का आधार है—सदाचार ही समाज की सत्ता है।

●

....यह स्मरण रहे कि क्या व्यक्ति और क्या जाति, सब की यही गति है कि जो आगे नहीं बढ़ता, उसे पीछे हटना पड़ता है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

★

अगरवालों की उत्पत्ति

★ ★ ★

साभार

"भारतेन्दु ग्रन्थावली"

[तीसरा भाग]

से

भूमिका

यह "वंशावली" परम्परा की जनश्रुति और प्राचीन लेखों से संग्रहीत हुई है, परन्तु इसका विशेष भाग भविष्य पुराण के उत्तर भाग में के श्री महालक्ष्मी व्रत की कथा से लिया गया है। इसमें वैश्यों में मुख्य अगरवालों की उत्पत्ति लिखी है। इस बात का महाराज जयसिंह के समय में निर्णय हुआ था कि वैश्यों में मुख्य अगरवाले ही हैं। इन अगरवालों का संक्षेप वृत्तांत इस स्थान पर लिखा जाता है। इनका मुख्य देश पश्चिमोत्तर प्रान्त है और बोली स्त्री और पुरुष सब की खड़ी बोली अर्थात् उर्दू है। इनके पुरोहित गौड़ ब्राह्मण हैं और इनका व्यवहार सीधा और प्रायः सच्चा होता है और इस जाति में एक विशेषता यह है कि इनमें कोई ऊँचे-नीचे नहीं होते और न किसी की अल्ल (उपाधि) होती है। बनारस और मिरजापुर में तो पुरबियों का नाम भी सुना जाता है, पर जो देश में पूछो कि तुम पुरबिए हो कि पछाँही तो वे लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं कि पुरबिए शब्द का क्या अर्थ है। बनारस के पछाँही लोगों में भी ठीक अगरवालों की रीतियां नहीं मिलती और उनकी बोली भी वैसी नहीं है। केवल जो घर

दिल्ली वाले लोगों के हैं उनमें वे बातें हैं। इन लोगों में जैसा विवाहादिक में उत्सव होता है वैसा ही मरने में बरसों दुःख भी करते हैं। परन्तु जब बूढ़ा मरता है तब तो विवाह से भी धूमधाम विशेष कर देते हैं।

देश में तो जामा पगड़ी पहन के सब दाल-भात खाते हैं पर इधर वह व्यवहार नहीं करते और केवल पूरी खाने में जाति का साथ देते हैं। एक बात यह भी इस जाति में उत्तम है कि अगरवालों में मांस और मदिरा की चाल कहीं नहीं है पर हुक्का इनके पुरोहित और ये दोनों पीते हैं। यों जो लोग नेमी हों वे न पीयें पर जाति की चाल है। विवाह के समय इनका बहुत व्यय करना सब में प्रसिद्ध है और इसी विपत से कई घर बिगड़ गए पर यह रीति छोड़ते नहीं। इनमें कुछ लोग जैनी भी होते हैं और देश में सब जनेऊ पहिरते हैं पर इधर पूरब में कोई-कोई नहीं भी पहिरते।

इनके पुरुषों का पहिरावा पगड़ी-पायजामा या धोती और अंगा है और स्त्रियों का पहिरावा ओढ़ना घंघरा या छोटेपन में सुथना है और दशों संस्कार होने की चाल इनमें अब तक मिलती है। पुरबियों के अतिरिक्त मारवाड़ी अगरवाले भी होते हैं पर इनका ठीक पता नहीं मिलता कि कब से और कहाँ से हैं। जैसे पछाँही अगरवालों की चाल खत्रियों से मिलती है वैसे ही इन मारवाड़ियों की महेश्वरियों से मिलती है पर पुरबियों की चाल तो इन दोनों से विलक्षण है।

अगरवालों की उत्पत्ति की भूमिका में यह बात लिखनी भी आनन्द देने वाली होगी कि श्री नन्दरायजी, जिनके घर साक्षात् श्री कृष्णचन्द्र प्रगट हुए, वैश्य ही थे और यह बात श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थों से भी निश्चय की गई है। जो हो इस कुल में सर्वदा से लोग बड़े धनवान और उदार होते आये पर इन दिनों वे बातें जाती रही थीं। मुगलों के समय से इनकी वृद्धि फिर हुई और अब तक होती जाती है।

मैंने इस छोटे से ग्रन्थ में संक्षेप में इनकी उत्पत्ति लिखी है। निश्चय है कि इसे पढ़ के वे लोग अपनी कुल परम्परा जानेंगे और मुझे भी अपने हीन और छोटे भाइयों में स्मरण रक्खेंगे।

वैशाख शु० ५ सं० १९२८
काशी

श्री हरिश्चन्द्र

वैश्यवंशावतंसाय भगवते श्री कृष्णचन्द्राय नमः

दोहा

विमल वैश्य वंशावली, कुमुदबनी हित चँद।
जय जय गोकुल, गोप, गो, गोपी-पति नंद-नन्द ॥ १ ॥

भगवान ने अपने मुख से ब्राह्मण और भुजा से क्षत्री और जांघ से वैश्य और चरण से शूद्रों को बनाया। उसमें वैश्य को चार कर्म का अधिकार दिया—पहिला खेती, दूसरा गऊ की रक्षा, तीसरा व्यापार और चौथा ब्याज। जैसे वेद और यज्ञादिक का स्वामी ब्राह्मण और राज्य और युद्ध का स्वामी क्षत्री वैसे ही धन का स्वामी वैश्य है। और ब्राह्मण क्षत्री-वैश्य इन तीनों की द्विज संज्ञा है और तीनों वर्ण वेद कर्म के अधिकारी हैं। पहिला मनुष्य जो वैश्यों में हुआ उसका नाम धनपाल था, जिसे ब्राह्मणों ने प्रतापनगर में राज पर बिठाकर धन का अधिकारी बनाया, उसके यहाँ आठ पुत्र और एक कन्या हुई। उस कन्या का नाम मुकुटा था और वह याज्ञवल्क्य ऋषि से ब्याही गई। उन आठ पुत्रों के ये नाम थे—शिव, नल, अनिल, नंद, कुँद, कुमुद, बल्लभ और शेखर। इन पुत्रों को अश्वविद्या शालिहोत्र के आचार्य विशाल राजा ने अपनी आठ बेटियाँ ब्याह दी थीं। उन कन्याओं के ये नाम थे और यही वैश्य लोगों की मात्रिका हैं—पद्मावती, मालती, काँती, शुभ्रा, भव्या, भवा, रजा और सुन्दरी। इनका ब्याह नाम के क्रम से हुआ। इन आठ पुत्रों में

नल नामा पुत्र जोगी दिगम्बर होकर वन में चला गया और सात पुत्रों ने सात द्वीप का अधिकार पाया। पृथ्वी में इनका वंश फैल गया। जम्बू द्वीप में विश्य नामा राजा हुआ जो आठ पुत्रों में शिव के कुल में था और उस विश्य के वैश्य हुआ। उसके वंश में एक सुदर्शन राजा हुआ, जिसके दो स्त्रियाँ थीं, जिनके नाम सेवती और नलिनी थे। उसका पुत्र धुरंधर हुआ। इसी धुरंधर का पड़पोता समाधि नामा वैश्य हुआ था। इसी समाधि के वंश में मोहनदास बड़ा प्रसिद्ध हुआ, जिसने कावेरी के तट पर श्री रंगनाथजी के बहुत से मंदिर बनवाये। इसका पड़पोता नेमिनाथ हुआ, जिसने नेपाल बसाया और उसका पुत्र वृन्द हुआ, जिसने श्रीवृन्दावन में यज्ञ करके वृन्दा देवी की मूर्ति स्थापन की। इस वंश में गुर्जर बहुत प्रसिद्ध हुआ, जिसके नाम से गुजरात का देश बसा है। इसके वंश में हीर नामा एक राजा हुआ जिसके रंग इत्यादिक सौ पुत्र थे, जिनमें रंग ने तो राज पाया और सब बुरे कर्मों से शूद्र हो गये और तप के बल से फिर इन लोगों ने वंश चलाये, जिनके वंश के लोग वैश्य हुए पर उनके कर्म शूद्रों के से थे। रंग का पुत्र विशोक हुआ, उसके पुत्र का नाम मधु और उसका पुत्र महीधर हुआ। महीधर ने श्री महादेवजी को प्रसन्न करके बहुत से वर पाये। इसके वंश में सब लोग व्यवहार में चतुर और सब धन और पुत्र से सुखी थे।

इसी वंश में वल्लभ नामा एक राजा हुए और उसके घर में बड़ा प्रतापी अग्र राजा उत्पन्न हुआ। इसको अग्रनाथ और

अग्रसेन भी कहते थे। यह बड़ा प्रतापी था। इसने दक्षिण देश में प्रतापनगर को अपनी राजधानी बनाया। यह नगर धन और रत्न और गऊ से पूर्ण था। यह ऐसा प्रतापी था कि इन्द्र ने भी उससे मित्रता की थी। एक समय नाग लोक से नागों का कुमुद नाम राजा अपनी माधवी कन्या को लेकर भूलोक में आया और उस कन्या को देख कर इन्द्र मोहित हो गया और नागराज से वह कन्या माँगी। पर नागराज ने इन्द्र को वह कन्या नहीं दी और उसका विवाह राजा अग्र से कर दिया। यही माधवी कन्या सब अगरवालों की जननी है और इसी नाते से हमलोग सर्पों को अब तक मामा कहते हैं।

इन्द्र ने इस बात से बड़ा क्रोध किया और राजा अग्र से बैर मानकर कई वर्ष उनकी राजधानी पर जल नहीं बरसाया और अग्र राजा से बड़ा युद्ध किया, तब भगवान ब्रह्मदेव ने दोनों को युद्ध से रोका। इससे राजा अपनी राजधानी में फिर आया। और राज्य अपनी स्त्री को सौंप के आप तीर्थों में घूमने चला गया और सब तीर्थों में फिर कर महालक्ष्मी की उपासना की और काशी में आकर कपिलधारा तीर्थ पर महादेवजी का बड़ा यज्ञ करके बहुत सा दान किया। तब श्री महादेवजी प्रसन्न होकर प्रगट हुए और कहा कि वर मांगो तब राजा ने कहा कि मैं केवल यही वर मांगता हूँ कि इन्द्र मेरे वश में होय। इस पर प्रसन्न हो कर अनेक वर दिये और कहा कि तुम महालक्ष्मी की उपासना करो तुम्हारी सब इच्छा पूरी होगी। यह सुनकर

राजा फिर तीर्थ में चला और एक प्रेत की सहायता से हरिद्वार पहुँचा और वहाँ से गर्ग मुनि के संग सब तीर्थों में फिरा और फिर जब हरिद्वार में आया तब वहाँ महालक्ष्मी की बड़ी उपासना की और देवी ने प्रसन्न होकर वर दिया कि इन्द्र तेरे वश में होगा और तेरे वंश में दुःखी कोई न होगा और अन्त में तुम दोनों स्त्री-पुरुष ध्रुवतारा के आस-पास रहोगे और इस समय तुम कोल्हापुर में जाओ, वहाँ नागराज के अवतार राजा महीधर की कन्याओं का स्वयंवर है। वहाँ उन कन्याओं से ब्याह करके अपना वंश चलाओ। देवी से ये वर पाकर राजा कोल्हापुर में गया और वहाँ उन कन्याओं से धूम-धाम से ब्याह किया और फिरकर दिल्ली के पास के देशों में आया और पंजाब के सिरे से आगरे तक अपना राज स्थापन किया और इन्हीं देशों में अपना वंश फैलाया। जब इन्द्र ने राजा के वर का समाचार सुना तब तो घबड़ाया और उससे मित्रता करनी चाही और बात के हेतु नारदजी को भेजा और एक अप्सरा जिसका नाम मधुशालिनी था देकर मेल कर लिया। इसके पीछे राजा अग्रसेन ने जमुनाजी के तट पर श्री महालक्ष्मी का बड़ा तप किया और श्री लक्ष्मीजी ने प्रसन्न होकर ये वर दिये कि आज से यह वंश तेरे नाम से होगा और तेरे कुल की मैं रक्षा करने वाली और कुलदेवी हूँगी और इस कुल में मेरा दीवाली का उत्सव सब लोग मानेंगे। यह वर देकर श्री महालक्ष्मी चली गईं। तब राजा ने आकर अपना राज बसाया। उस राज की उत्तर सीमा

हिमालय पर्वत और पंजाब की नदियाँ थी। पूर्व और दक्षिण की सीमा श्री गंगाजी और पश्चिम की सीमा जमुनाजी से लेकर मारवाड़ देश के पास के देश थे। इनके वंश के लोग सर्वदा इन्हीं देशों में बसे। इससे मुख्य अगरवाले लोग वे ही हैं जो पंजाब प्रान्त से इधर मेरठ आगरे तक के बसने वाले हैं। अगरवालों के मुख्य बसने के नगर ये हैं : १—आगरा, जिसका शुद्ध नाम अग्रपुर है। यह नगर राजा अग्र के पूर्व दक्षिण प्रदेश की राजधानी था। २—दिल्ली, जिसका शुद्ध नाम इन्द्रप्रस्थ है। ३—गुड़गांवां, जिसका शुद्ध नाम गौड़ ग्राम है। यह नगर अगरवालों के पुरोहितों गौड़ ब्राह्मणों को मिला था, इसीसे प्रायः अगरवाले लोग यहीं की माता को पूजते हैं। ४—मेरठ, जिसका शुद्ध नाम महाराष्ट्र है। इसको कोई मयराष्ट्र भी कहते हैं। ५—रोहतक, जिसका शुद्ध नाम रोहिताश्व है। ६—हाँसीहिसार, जिसका शुद्ध नाम हिसारि देश है। ७—पानीपत, इसका शुद्ध नाम पुन्यपत्तन जाना जाता है। ८—करनाल, ९—कोट कांगड़ा, जिसका शुद्ध नाम नगरकोट है। अगरवालों की कुलदेवी महा-माया का मंदिर यहीं है और ज्वालाजी का मंदिर भी इसी नगर की सीमा में है। १०—लाहौर, इस नगर का शुद्ध नाम लवकोट है। ११—मंडी, इसी नगर की सीमा में रैवालसर तीर्थ है। १२—विलासपुर, इसी नगर की सीमा में नयना देवी का मंदिर बसा है। १३—गढ़वाल। १४—जींदसपीदम। १५—नाभा। १६—नारनौल, इसका शुद्ध नाम नारिनवल है। ये सब नगर

उस राज में थे और राजधानी का नाम अग्र नगर था। जिसे अब अगरोहा कहते हैं। आगरा और अगरोहा ये दोनों नगर राजा अग्रसेन के नाम से आज तक प्रसिद्ध हैं। राजा अग्रसेन ने अपनी राजधानी में महालक्ष्मी का एक बड़ा मन्दिर बनवाया था।

राजा अग्रसेन ने साढ़े सत्रह यज्ञ किये। इसका कारण यह है कि जब राजा ने अट्ठारहवाँ यज्ञ आरम्भ किया और आधा हो भी चुका तब राजा को यज्ञ की हिंसा से बड़ी ग्लानि हुई और कहा कि हमारे कुल में यद्यपि कहीं भी कोई मांस नहीं खाता परन्तु देवी हिंसा होती है, सो आज से जो मेरे वंश में हों उसको यह मेरी आन है कि देवी हिंसा भी न करे अर्थात् पशु-यज्ञ और बलिदान भी हमारे वंश में न होवे। और इससे राजा ने उस यज्ञ को भी पूरा नहीं किया। राजा को सत्रह रानी और एक उपरानी थी। उनसे एक-एक को तीन-तीन पुत्र और एक-एक कन्या हुई और उसी साढ़े सत्रह यज्ञ से साढ़े सत्रह गोत्र हुये। कोई लोग ऐसा भी कहते हैं कि किसी मनुष्य का ब्याह जब गोत्र में हो गया, तो बड़े लोगों ने एक ही गोत्र के दो भाग कर दिये, इससे साढ़े सत्रह गोत्र हुये पर यह बात प्रमाण के योग्य नहीं है। राजा अग्र के उन बहत्तर पुत्र और कन्याओं के बेटा अग्रवाल कहाये। अग्रवाल का अर्थ अग्र के बालक हैं। अग्रवालों के साढ़े सत्रह गोत्रों के ये नाम हैं। १—गर्ग, २—गोइल, ३—गावाल, ४—वातसिल, ५—कासिल, ६—सिंहल, ७—मंगल, ८—भद्दल,

९—तिंगल, १०—ऐरण, ११—टैरण, १२—ठिंगल, १३—तित्तल, १४—मित्तल, १५—तुंदल, १६—तायल, १७—गोभिल और गवन अर्थात् गोइन आधा गोत्र है। पर अब नामों में के कुछ अक्षर उलट-पुलट भी हो गए हैं। राजा अग्र ने अपने सहायक गर्ग ऋषि के नाम से अपना प्रथम गोत्र किया और दूसरे गोत्रों के नाम भी यज्ञों के अनुसार रखे। राजा अग्र ने अपने कुल पुरोहित गौड़ ब्राह्मण बनाये और उस काल में सब अगरवाले वेद पढ़ने वाले और त्रिकाल साधने वाले थे। राजा अग्र बूढ़ा होकर तप करने चला गया और उसका पुत्र विभु राज पर बैठा और उसके कई वंश तक राजा लोग अपने धर्म में निष्ठ होकर राज करते रहे। इस वंश में दिवाकर एक राजा हुआ जो वेद-धर्म छोड़कर जैनी हो गया और उसने बहुत से लोगों को जैनी किया और उसी काल से अगरवालों में वेदधर्म छूटने लगा परन्तु अग्रोहा और दिल्ली के अगरवालों ने अपना धर्म नहीं छोड़ा। इस वंश में राजा उग्रचन्द्र के समय से राज घटने लगा और जब शहाबुद्दीन ने चढ़ाई किया तब तो अगरोहा का सब भाँति नाश कर दिया। शहाबुद्दीन की लड़ाई में बहुत से लोग मारे गये और उनकी बहुत सी स्त्री सती हुई, जो हम लोगों के घर में अब तक मानी और पूजी जाती हैं। यह अगरवालों के नाश का ठीक समय था। इसी समय से इनमें से बहुतों ने धर्म छोड़ दिये और यज्ञोपवीत तोड़ डाले। उस समय जो अगरवाले भागे वे मारवाड़ और पूर्व में जा बसे और उनके वंश में पुरबिये और मारवाड़ी

अगरवाले हुये, और उत्तराधी और दखिनाधी लोग भी इसी भाँति हुये, पर मुख्य अगरवाले पछाँही वे ही कहलाये जो दिल्ली प्रान्त में बच गये थे। जब मुगलों का राज हुआ तब अगरवालों की फिर बढ़ती हुई और अकबर ने तो अगरवालों को अपना वजीर बनाया। उसी काल से अगरवालों की विशेष वृद्धि हुई। अकबर के दो मुख्य और प्रसिद्ध अगरवाले वजीर थे जिनका नाम महाराज टोडरमल* और मद्धूसाह था। मद्धूसाही पैसा इन्हीं के नाम से चला है।

॥ इति अग्रवालों की उत्पत्ति सम्पूर्ण ॥

प्रथम बार सन् १८७१ ई० में द मेडिकल हाल प्रेस से डबल क्राउन ३२ पेजी के पृष्ठ संख्या २० में छपा। इसी वर्ष कवि वचन सुधा में विज्ञापन निकला।

* राजा टोडरमल खत्री थे। यह बात भारतेन्दुजी को शिवपुर द्रौपदी कुण्ड के लेख देखने से पीछे से ज्ञात हुई; यह लेख हरिश्चन्द्र कला (खड्ग विलास प्रेस—बांकीपुर) में छपा है।

२६।३।१५ —रायकृष्णदास